सत्यमेव जयते

भारत का विधि आयोग

श्रम न्यायनिर्णयन में राष्ट्रीय एकरूपता के लिए

न्यायालय

पर

एक सौ बाईसवीं रिपोर्ट

दिसम्बर, 1987

अ०स०सं० 6(2)(1)/87–वि०आ०

डी०ए० देसाई
अध्यक्ष

टेली० नं० 384475
विधि आयोग
भारत सरकार
शास्त्री भवन
नई दिल्ली

9 दिसम्बर, 1987

प्रिय श्री शिवशंकर,

न्याय प्रशासन के विकेन्द्रीकरण पर अपनी श्रृंखला को जारी रखते हुए मुझे आज आपको "श्रम न्यायनिर्णयन में राष्ट्रीय एकरूपता के लिए न्यायालय" पर विधि आयोग की एक सौ बाईसवीं रिपोर्ट भेजते हुए प्रसन्नता हो रही है।

जैसा कि आप जानते हैं, न्यायिक सुधारों को सिफारिश करने का कार्य विधि आयोग को फरवरी 1986 में सौंपा गया था। न्यायिक सुधारों पर विचार करने और उनकी सिफारिश करने के लिए प्रस्तावित आयोग को सौंपे जाने वाले कृत्य विधि आयोग को इस अनुरोध के साथ भेजे गए थे कि इस कार्य को सर्वोच्च पूर्विकता प्रदान की जाए।

विधि आयोग ने न्यायिक पद्धति में सुधारों की सिफारिश करने के कार्य को पूर्विकता प्रदान करने के संबंध में भारत सरकार की चिन्ता को भली प्रकार समझा है और इसीलिए एक वर्ष से अधिक समय से आपको और आपके पूर्व-पूर्ववर्ती को विषयवार रिपोर्ट भेजी जा रही है। कुछ विश्लेषकों का तो कहना है कि हमारी न्यायिक पद्धति विध्वंस के कगार पर पहुंच गई है। निस्सन्देह, विधि आयोग पूर्णतया इस कार्य में लगा हुआ है और अपने कार्यकाल की समाप्ति से पूर्व वह सभी मुद्दों पर विचार करने की आशा करता है।

प्रस्तुत रिपोर्ट में श्रम विधियों के सम्बन्ध में एक अखिल भारतीय परिप्रेक्ष्य का विकास करते हुए और साथ ही साथ उच्च न्यायालयों की अधिकारिता का अपवर्जन करते हुए तथा संविधान के अनुच्छेद 136 के अधीन उच्चतम न्यायालय में एक अपील की व्यवस्था को कायम रखते हुए, अखिल भारतीय अधिकारिता रखने वाले एक न्यायालय को आरंभ करने और उसे स्थापित करने के प्रश्न पर विचार किया गया है। इस रिपोर्ट में मुख्य रूप से श्रम विधियों से बरतने के लिए ऐसे एक न्यायालय को स्थापित करने पर विचार किया गया है, अतः यह उचित ही होगा कि न्याय विभाग, श्रम मंत्रालय से सीधा सम्पर्क स्थापित करे जिससे कि उन्हें इस रिपोर्ट का फायदा मिले। इस अनुरोध में अत्यावश्यकता का तत्व इस तथ्य में निहित है कि प्रचार माध्यमों से प्राप्त रिपोर्ट के अनुसार श्रम मंत्रालय औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 में व्यापक संशोधनों की सिफारिश करने के कार्य में लगा हुआ है। इस रिपोर्ट में की गई सिफारिशें उसका अनिवार्य भाग बन सकती हैं और उस पर अलग-थलग विचार न किया जाए। मेरा आपसे अनुरोध है कि आप इस पहलू पर अपनी सुविधानुसार अतिशीघ्र विचार करें।

सादर,

भवदीय
(डी०ए० देसाई)

माननीय श्री पी० शिवशंकर,
विधि और न्याय मंत्री,
भारत सरकार,
शास्त्री भवन,
नई दिल्ली।

अनुलग्न : एक रिपोर्ट

88-M/B(N)318MofLJ&CA—1

विषय सूची

		पृष्ठ
अध्याय 1	प्रस्तावना	1
अध्याय 2	वर्तमान संरचना	3
अध्याय 3	इस प्रश्न पर विगत काल में निकायों का दृष्टिकोण . .	12
अध्याय 4	दृष्टिकोण और औचित्य	15
अध्याय 5	न्यायालय, उसका रूपविधान, उसकी अधिकारिता और उसमें काम करने वाले कार्मिक	18
निर्देश	. . . . .	23
परिशिष्ट 1	कार्य पत्र (प्रश्नावली)	25
परिशिष्ट 2	औद्योगिक और श्रम विधियों की सूची . . .	34
परिशिष्ट 3	भाग क 1–10–1987 को अनुच्छेद 136 के अधीन उच्चतम न्यायालय में लम्बित श्रम मामले	36
	भाग ख उच्चतम न्यायालय में 1–1–1986 को वर्षवार गैर-संवैधानिक श्रम मामलों की लम्बित नियमित सुनवाई की संख्या . .	36
परिशिष्ट 4	उच्च न्यायालय में लम्बित मामलों की संख्या—लोक सभा में अतारांकित प्रश्न सं 1793 के उत्तर में विवरण . .	37
परिशिष्ट 5	उच्च न्यायालयों में लम्बित, श्रम विधियों के अधीन मामलों का विवरण परि शिष्ट 5 का उपाबन्ध	38
परिशिष्ट 6	श्रम विधियों की सूची जिसमें विवादों के निपटारे और अपील प्राधिकारियों के बारे में उपबन्ध उपदर्शित किए गए हैं .	39

अध्याय 1

प्रस्तावना

1.1. वर्तमान विधी आयोग को सौंपे गए कार्यों में से एक कार्य न्यायिक सुधारों के लिए उपायों का अध्ययन करना तथा उच्चतम और उच्च न्यायालयों में कार्य की मात्रा को कम करने के लिए न्याय प्रशासन प्रणाली के, न्यायिक अधिक्रम के भीतर अन्य प्रणालियां स्थापित करके, विकेन्द्रीकरण की दृष्टि से अन्य बातों के साथ नये परिवर्तन लाने वाले सुझाव देना है। न्यायिक सुधारों के अध्ययन के संदर्भ में सौंप गए कार्यों की सूची में उपदर्शित एक उपाय उच्चतम न्यायलय और उच्च न्यायालयों सहित व्यापक स्वरूप के न्यायालयों के सामने आने वाले मामलों और संविवादों के शीघ्र निपटाने के लिए संविधान के भाग 14क मे यथापरिकल्पित विशेषज्ञ स्वरूप के अधिकरणों की बात सोचना है।

1.2. विधी आयोग ने एक रिपोर्ट प्रस्तुत की थी जिसमें उसन सिफारिश की थी कि प्रत्यक्ष कर विधियों, अप्रत्यक्षकर विधियों तथा निर्यात और आयात विनियमों के अधीन मामलों और संविवादों के संबंध में कार्यवाही करने क लिए केन्द्रीय कर न्यायालय स्थापित किए जाएं उस रिपोर्ट में आज भारत में प्रचलित न्याय प्रशासन की भीमकाय प्रणाली के विकन्द्रीकरण के लिए विस्तृत विश्लेषण किया गया है। यह सच है कि विचारण क स्तर पर विशेषज्ञ न्यायालय और अधिकरण हैं जो भिन्न-भिन्न विधी संवर्गों के अधीन उत्पन्न होने वाले विवादों पर विचार करते हैं, किन्तु उच्च न्यायालयों को सभी विशेषज्ञ न्यायालयों और अधिकरणों के विनिश्चयों के न्यायिक पुनर्विलोकन की सांविधानिक शक्ति प्राप्त है। इस प्रकार न्याय-लय के स्तर पर और उच्चतम न्यायालय में भी विशषज्ञ और व्यापक न्यायालय कार्य का एक मिश्रण है। परिणाम यह है कि उच्च न्यायलय के स्तर पर विशेषज्ञ स्वरूप के सभी प्रकार के मामलों और संविवादों पर अविशेषज्ञ न्यायाधीशों द्वारा विचार किया जाता है। उस रिपोर्ट में, विशेषज्ञ अपील स्तरीय निकायों की व्यवस्था करने की दृष्टि से विकेन्द्रीकरण की आवश्यकता के कारण बताए गए हैं और उन कारणों के क्रम में वर्तमान रिपोर्ट में अनेक श्रम विधियों के अधीन उत्पन्न होने वाले मामलों/विवादों में एकरूपता लाने के लिए एक अखिल भारतीय न्यायालय की स्थापना का सुझाव देने पर विचार किया गया है।

1.3. विशेषज्ञ न्यायालय और अधिकरण स्थापित करने की आवश्यकता लगभग सभी कामन ला देशों में महसूस की गई है। अतः विशेषज्ञ अधिकारिता के प्रति झुकाव विश्व के अनेक भागों में समान रूप से पाया जाता है। वर्तमान शताब्दी में अभी तक आस्ट्रेलिया में जो विभिन्न औद्योगिक अधिकारिताएं विद्यमान रही हैं वे अनोखे स्वरूप की हैं[2]। अमरीका में न्यायालय और आपात अपील न्यायालय विशेषज्ञ न्यायालयों के विनिर्दिष्ट उदाहरण हैं। यह बात नहीं है कि न्याय प्रशासन के विकेन्द्रीकरण द्वारा विशेषज्ञ न्यायालयों को स्थापित करने का यह तरीका खतरे से खाली है। विशेषज्ञ न्यायालयों के समर्थक यह बात बलपूर्वक कहते हैं कि सूविज्ञ न्यायाधीशों को इस बारे में शिक्षित करने की आवश्यकता नहीं होगी कि प्रस्तुत विवाद विधि के व्यापक समूह में किस प्रकार ठीक बैठते हैं। परिणामस्वरूप विशेषज्ञ न्यायाधीश प्रश्नों का समाधान और तेजी से तथा कदाचित अधिक 'सही रूप से' कर सकते हैं और इसके लिए वकील को उन्हें विधि पढ़ाने का प्रयास नहीं करना होगा। इसके अतिरिक्त, विशेषज्ञ न्यायाधीश किसी अन्य कामकाज के भार के बिना अलग अलग मामलों पर अधिक समय लगा सकते हैं। कतिपय प्रकार के मुकदमों को एकल विशेषज्ञ न्यायालयों तक सीमित करने से एकरूपता और पूर्व कथनीयता सुनिश्चित होगी और वकील सभी न्यायालयों का सहारा लिए बिना और अधिक विवादों का निपटारा कर सकेंगे। तात्पर्य यह है कि जब कोई न्यायालय जो विवाद की सुनवाई कर रहा है, निरंतर उस विधि के विषय में कार्य करता है जो लागू की जानी है तो कहा जाता है कि दक्षता और पूर्व कथनीयता परिणाम होगा[3]। विशेषज्ञ न्यायालय के विरोधी बलपूर्वक यह कहते हैं कि यदि कतिपय वर्ग के बाद न्यायिक मुख्यधारा से हटा लिए जाते हैं तो विशेषज्ञ न्यायालय की स्थापना का परिणाम पार्थक्य तथा तर्कों का कम अन्वेषण और संवीक्षा होगा[4]। अधिवक्ताओं की एक प्रवृत्ति यह है कि वे विशेषज्ञ न्यायालयों को, न्यायिक अधिक्रम में उनके स्थान का विचार किए बिना अवर (निम्नतर) न्यायालय के रूप में मानते है। विधिज्ञ समुदाय के सदस्य विशेषज्ञ न्यायालयों में न्यायाधीश के पद को कम ही स्वीकार करते हैं। भारतीय परिवेश में यह भय सर्वथा अनुचित है।

1.4. न्याय प्रशासन का विकेन्द्रीकरण अनेक प्रकार के विशेषज्ञ न्यायालयों की स्थापना करके किया गया है। आस्ट्रेलिया में ज्ञात विशेषज्ञ न्यायालय (1) बालक न्यायालय, (2) परिवार न्यायालय, (3) औद्योगिक न्यायालय, आयोग और बोर्ड, (4) लघु दावा न्यायालय और अधिकरण, (5) कारोनर (मृत्युसमीक्षक) न्यायालय, (6) अनुज्ञापन न्यायालय, (7) वार्डन न्यायालय, (8) भूमि और पर्यावरण न्यायालय, (9) स्थानीय शासन न्यायालय, (10) बाजार न्यायालय, (11) खनक न्यायालय आदि हैं[5]। अनौपचारिकता और विशेषज्ञता की अपेक्षाएं ऐसे विशेषज्ञ न्यायालयों को पर्याप्त समर्थन प्रदान करती है। साधारण व्यक्ति साधारण न्यायालयों के बारे में यह समझता है कि उनमें अत्यधिक औपचारिकता और विशेषज्ञ का अभाव होता है किन्तु विशेषज्ञ न्यायालयों की स्थिति उसके बिल्कुल विपरीत है।

1.5. न्यायालय संरचना और प्रशासन को आधुनिक बनाने तथा न्यायालय से सम्बन्धित अतिरिक्त उद्देश्यों की पूर्ति के लिए एक सुधार आन्दोलन चल रहा है और इसके बारे में कुछ मतैक्य विकसित हुआ है[6]।

1.6. श्रम विधियों के अधीन उत्पन्न विवादों पर विचार करने के लिए, साधारण सिविल अधिकारिता न्यायालयों से सुभिन्न विशेषज्ञ न्यायालयों की मांग इस धारणा पर आधारित है कि साधारण सिविल अधिकारिता वाले न्यायालय संविदा को उस रूप में लेते हैं जिस रूप में वह है। अतः यह औपचारिक दृष्टिकोण नियोजकों और कर्मकारों के बीच विवादों का निपटारा करने के लिए स्थापित न्यायालयों से विसंगत होगा जहां दृष्टिकोण यह देखना होता है कि संविदा क्या होनी चाहिए। कुछ हद तक, यह व्यापक स्वरूप के न्यायालयों में बढ़ती हुई निर्णयज विधि संबंधी समस्याओं की एक प्रतिक्रिया भी है। कार्य की मात्रा ज्यों-ज्यों बढ़ती जाती है, वकीलगण अधिकाधिक विशेषज्ञ होते जा रहे हैं। अमेरिका में, अधिकतर एकल विधि व्यवसायी भागीदारी में सम्मिलित हो गए हैं, एकल स्थानीय फर्म राष्ट्रीय फर्मों द्वारा संपूरित हो रही हैं। ऐसी स्थिति में विधिज्ञ वर्ग और न्यायाधीशों के बीच अन्तर्संबन्ध, विशेषज्ञ न्यायालयों के समक्ष आने वाले विशेष स्वरूप के विवादों के जानकार न्यायाधीशों वाले अधिक विशेषज्ञ न्यायालयों की व्यवस्था करके स्थापित किया जा सकता है। न्यायाधीशों के बीच बृहत्तर विशेषज्ञता के प्रति एक संभाव्य प्रतिक्रिया यह है कि कोई भी यह नहीं कहता है कि व्यापक स्वरूप वाली न्यायपालिका समाप्त कर दी जाए किन्तु ऐसे जटिल मामलों में जिनमें तकनीकी ज्ञान तथा पक्षकारों के बीच अन्तर्सम्बन्ध को और वाद के स्वरूप को समझने की अन्तर्दृष्टि अपेक्षित होती है, ऐसे न्यायाधीश जिन्हें अन्तर्वलित विशिष्ट विधि क्षेत्र में कोई विशेषज्ञता प्राप्त नहीं है, सदैव ठीक से कार्यवाही नहीं कर पाते हैं।

1.7. अनेक श्रम विधियों के अधीन विवादों पर विचार करने वाले न्यायाधीशों को मानविकी, सामाजिक विज्ञान, सामाजिक-आर्थिक न्याय, विवाद के पक्षकारों की असमान स्थिति, राष्ट्रीय अर्थव्यवस्थ, योजना के लक्ष्यों और उस भावी समाज के जिसकी परिकल्पना संविधान में की गई है, स्वरूप का ज्ञान होना आवश्यक है। संक्षेप में, उन्हें उन सभी पहलुओं का ज्ञान होना चाहिए जो व्यक्तिगत आवश्यकता और सामाजिक कल्याण के बीच संतुलन स्थापित करने में उनके सहायक होंगे।

1.8. विधि सुधार प्रभावी होने के लिए यह आवश्यक है कि उसमें उन लोगों के जिनका सुझाए गए परिवर्तन से प्रभावित होना संभाव्य है और समाज के भी, जो सामाजिक इंजीनियरी के एक साधन के रूप में विधि के विकास में अनिवार्य रूप से हितबध होता है, विचार प्रतिबिम्बित हों। इस देश में श्रम विधियों के प्रशासन से सम्पृक्त समरुचि समूहों तक पहुंचने के उद्देश्य से विधि आयोग ने एक व्यापक कार्य-पत्र तैयार किया था जिसके साथ एक छोटी सी प्रश्नावली भी जुड़ी हुई थी। यह इस आशा से किया गया था कि विचार-विमर्श में रुचि रखने वालों का ध्यान उन विनिर्दिष्ट मुद्दों पर केंद्रित होगा जिनपर आयोग इस रिपोर्ट में चर्चा करेगा। ऐसा प्रतीत हो सकता है कि कार्यपत्र में आयोग का जो दृष्टिकोण है वह अंतिम रिपोर्ट तैयार होने पर परिष्कृत हो जाएगा। स्थिति को देखते हुए ऐसा होना भी चाहिए क्योंकि इससे प्राप्त सुझावों हुए विचार-विमर्श और वादविवादों तथा विषय से सम्बन्धित आधुनिक साहित्य का प्रभाव दर्शित होता है। उचित मूल्यांकन के लिए कार्य पत्र इस रिपोर्ट के परिशिष्ट 1 क रूप में संलग्न है।

1.9. विधि आयोग को यह अभिलिखित करते हुए प्रसन्नता हो रही है कि केन्द्रीय व्यवसाय संघों, नियोजक संगठनों, और विभिन्न अन्य समरुचि समूहों ने कार्य पत्र और प्रश्नावली का सकारात्मक रूप से उत्तर दिया और हम उनके आभारी हैं क्योंकि उन्होंने हमारी, अपनी सिफारिशें तैयार करने में सहायता की है। उभर कर जो एक मतैक्य सा सामने आया वही इस रिपोर्ट की आधारशिला है।

अध्याय 2

वर्तमान संरचना

2.1. टुकड़ों में बंटे हुए शक्ति अभिभूत समाज में जिसमें उसका एक भाग दूसरे पर शक्तिशाली प्राधिकार का प्रयोग करने की स्थिति में है, हितों का टकराव अनिवार्य रूप से उभर कर सामने आएगा। समाज के ताने-बाने में यह बात अन्तर्निहित है। औद्योगिक समाज में जिसमे उत्पादन के साधनों पर प्राइवेट व्यक्तियों का नियंत्रण होता है, उद्देश्य केवल यही होता है कि लाभ अधिक से अधिक हो। यही बात कुछ हद तक, उन लोगों के जो उन्हें नियोजित करने वाले लोगों के साथ संविदा करने के विषय में असमान स्थिति में होते हैं, शोषण को उचित ठहराती है। किसी को भी यह भुलावा नहीं होना चाहिए कि मानवतावादी विचारों के फलस्वरूप अथवा निष्पक्ष और न्यायसंगत होने के उद्देश्य से श्रम बल को कुछ अधिकार प्रदत्त किए गए थे। वस्तुतः, यह कहना एक घिसीपिटी बात है कि श्रम विधि, जैसी कि औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 में है, सामाजिक-आर्थिक न्याय के उपाय के रूप में अधिनियमित नहीं की गई थी बल्कि वह तो वस्तुतः विधि और व्यवस्था का एक उपाय है। जहां हितों का टकराव होता है, जैसे कि नियोजकों की यह उत्सुकता कि कम से कम भुगतान हो और श्रमिकों की एक ऐसे भुगतान के लिए उत्सुकता जिसके सहारे वे जीवन निर्वाह कर सकें, वहां आमना-सामना होगा और उसकी परिणति सीधी कार्रवाई में होगी जिसका प्रतिकूल प्रभाव उत्पादन पर पड़ेगा। प्रथम पंचवर्षीय योजना में कहा गया था.........:

> "वर्ग वैमनस्य और विश्व संघर्ष का शीघ्र उत्तर तभी प्राप्त होगा जबकि हम उद्योग में मानवीय सम्बन्धों के लिए एक उचित आधार का पता लगाने में सफल होंगे। आर्थिक प्रगति भी औद्योगिक शांति से जुड़ी हुई है। अतः औद्योगिक सम्बन्ध केवल नियोजकों और कर्मचारियों के बीच का विषय नहीं है, अपितु वह समुदाय की अत्यावश्यक चिन्ता का विषय है जो उसके व्यापक हित के संरक्षण के उपायों में अभिव्यक्त हो सकती है।"[7]

2.2. यह अनुभूति सामंतवादी भारतीय समाज के औद्योगिकरण के लिए एक दृढ़ व संरचना निर्धारित करके आर्थिक विकास को उच्च पूर्विकता प्रदान करने के परिणामस्वरूप बढ़ी। उस समय तक, और विशेष रूप से द्वितीय विश्व युद्ध के दिनों से प्रारंभ करके, ऐसी सीधी कार्रवाई से, जिसका उत्पादन—बेरोकटोक उत्पादन—पर प्रतिकूल प्रभाव पड़े, पहले तो युद्ध प्रयास के लिए और फिर भारतीय समाज के योजनाबद्ध विकास के लिए—बचने के लिए राज्य की मशीनरी को सक्रिय किया गया।

2.3. भारत रक्षा नियम के, जो औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 का अग्रगामी था, नियम 81क में समुचित सरकार को यह शक्ति प्रदान की गई है वह पक्षकारों को अनिवार्य न्यायनिर्णयन के लिए जाने के लिए विवश करके, न्यायनिर्णयन की कार्यवाही लम्बित रहने के दौरान और उसके बाद दो मास की अवधि तक हड़तालों या तालाबन्दियों को प्रतिषिद्ध करके औद्योगिक विवादों में हस्तक्षेप कर सकती है। ऐसी हड़तालों पर जो वास्तविक व्यापार संबंधी विवादों से उत्पन्न नहीं हुई हैं आम पाबंदी लगा दी गई थी[8]। "हड़ताल और तालाबन्दी की अशिष्ट और बर्बर प्रक्रिया के स्थान पर अधिनिर्णय को पृष्ठभूमि बनाकर, समझौते की प्रक्रिया प्रतिस्थापित की गई है। इसका कारण बल को हटा देना है। राज्य की शक्ति औद्योगिक विवादों के पक्षकारों और अन्य विवादों के पक्षकारों के बीच शांति को प्रवृत्त करने के लिए है और यह सब कुछ लोक हित में किया जाता है।"[9] युद्ध समाप्त होने पर, उक्त नियम 1 अक्तूबर, 1946 से व्यपगत होना था किन्तु उसे इमरजेन्सी पावर्स (कन्टीन्यूएन्स) आर्डिनेन्स, 1946 द्वारा प्रवृत्त रखा गया था। इसी के साथ, औद्योगिक नियोजन (स्थायी आदेश) अधिनियम, 1946 अधिनियमित किया गया जिसमें औद्योगिक स्थापनों में नियोजकों को, उनके अधीन सेवा की शर्तें पर्याप्त प्रमितता से विहित करने के लिए और औद्योगिक कर्मचारियों को उन शर्तों की जानकारी देने के लिए विवश करने की दृष्टि से ऐसे स्थायी आदेश जिनके अंतर्गत सेवा शर्तों के विभिन्न पहलू आते हैं, विरचित करने और उन्हें प्रमाणित करने का उपबंध था। संविधान के लागू होने पर उसके भाग 4 के अधीन राज्य को, जिससे सरकार के सभी अंग अभिप्रेत हैं, को यथासंभव प्रभावी रूप से एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था को सुनिश्चित करके और उसकी संरक्षा करके जिसमें राष्ट्रीय जीवन की सभी संस्थाएं सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय से अनुप्राणित हों, जनसाधारण के कल्याण की अभिवृद्धि करने का प्रयास करना था। राज्य को, विशेष रूप से, न केवल व्यक्तियों के बीच बल्कि भिन्न भिन्न क्षेत्रों के निवा i या भि व्यवसायों

में लगे जन समूहों के बीच भी आय की असमानता को न्यूनतम करने का प्रयास करना तथा प्रास्थिति, सुविधाओं और अवसरों में असमानताओं को दूर करने का प्रयास करना था (अनुच्छेद 38)। अपनी आर्थिक क्षमता और विकास की सीमाओं के भीतर रहते हुए राज्य को काम के, शिक्षा के और बेरोजगारी, वृद्धावस्था, बीमारी और नि:शक्तता के मामलों में तथा अभाव के अन्य मामलों में लोक सहायता के अधिकार को सुनिश्चित करने के लिए प्रभावकारी उपबंध करना था (अनुच्छेद 41)। राज्य से अपेक्षित था कि वह उपयुक्त विधान या आर्थिक संगठन द्वारा या किसी अन्य रूप में, सभी कृषि, औद्योगिक या अन्य कर्मकारों के लिए काम, जीवन निर्वाह मजदूरी, जीवन के एक स्तर और विश्राम तथा सामाजिक और सांस्कृतिक अवसरों के पूर्ण उपभोग को सुनिश्चित करके काम की दशाएं प्राप्त करने का प्रयास करे (अनुच्छेद 43)। राज्य से अपेक्षित था कि वह उपयुक्त विधान द्वारा या किसी अन्य रूप में, किसी उद्योग में लगे उपक्रमों, स्थापनों या अन्य संगठनों के प्रबंध में कर्मकारों का सहयोग सुनिश्चित करे (अनुच्छेद 43क)।

2.4. संविधान में विधि शासन द्वारा शासित समाज की बात सोची गई है। अत: राज्य को उद्देशिका में दिए गए इस वचन को कि राज्य अपने नागरिकों के लिए सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय और अवसर की समानता सुनिश्चित करेगा, वास्तविक रूप प्रदान करने के लिए अनेक विधान अधिनियमित करने पड़े। उद्योग में श्रमिकों की स्थिति को उत्पादन के एक कारक से बदल कर उसको एक भागीदार बनाकर श्रमिकों के लिए सामाजिक-आर्थिक न्याय सुनिश्चित करना विधि का काम था। विधि के माध्यम से, श्रमिकों की सौदेबाजी की असमान शक्ति को दृढ बनाना था जिससे कि उद्योग में सीधी कार्रवाई, मुकाबले या विरोध से बचा जा सके और शांति एवं मित्रभाव सुनिश्चित हो सके जो कि उच्चतर उत्पादन के लिए एक पूर्वापेक्षा है और उसके द्वारा श्रम बल की आर्थिक स्थिति में सुधार और उन्नति करना था। शक्तिशाली औद्योगिक नियोजकों द्वारा कर्मकारों के शोषण को ऐसे अनेक विधान अधिनियमित करके दूर करना था जो मुकाबले से बचने में सहायक हों और प्रत्यक्ष रूप से विरोधी हितों वाले पक्षकारों को अपने विवादों के बारे में बातचीत करने और उनका निराकरण करने के लिए प्रेरित कर सकें। इस उद्देश्य को दृष्टि में रखते हुए केन्द्रीय सरकार ने 1947 से लगभग 51 विधान अधिनियमित किए जिनकी एक सूची इस रिपोर्ट के परिशिष्ट 2 में दी हुई है।

2.5. इन सभी अधिनियमों में मूलभूत धारणा यह है कि विधि के अधिनियमित हो जाने पर, विधिक मंजूरियों के सृजित हो जाने पर और उनके प्रवर्तन के लिए मशीनरी (तंत्र) की व्यवस्था हो जाने पर तथा जब अतिक्रमणों के विरुद्ध कार्रवाई की जाती है तब उद्योग में शांति और मैत्री भाव व्याप्त रहेगा। इस संदर्भ में "शांति" शब्द के प्रयोग से किसी को भ्रम नहीं होना चाहिए। "शांति" का अर्थ अधिक शक्तिशाली वर्गों द्वारा अपनी शर्तों पर दुर्बल वर्गों पर अधिरोपित दासतापूर्ण परवशता नहीं है। अपने व्यापक अर्थ में "शांति" संघर्ष से बचने की मात्र नकारात्मक धारणा नहीं है अपितु वह प्रत्येक वर्ग के यथासंभव पूर्ण विकास के लिए सभी के उपयोगी सहयोग की एक सकारात्मक धारणा है[10]।"

2.6. सामाजिक कायापलट के लिए और सामाजिक-आर्थिक न्याय को प्रवर्तित करने के लिए परिवर्तन का एक प्रभावकारी साधन होने के लिए विधि को मंजूरी प्राप्त होनी चाहिए और उसे अनुपालन के लिए विवश करना चाहिए। उसके प्रभावकारी क्रियान्वयन में, वह आशा जो विधि से की जाती है पूर्णतया पूरी होनी चाहिए अन्यथा विधि स्वयं और अधिक शोषण का साधन हो जाएगी। विभिन्न उद्योगों में नियोजित श्रमिकों की दशाओं के सुधार के लिए विधियों में पक्षकारों की सम्मति से और उसके अभाव में अनिवार्य न्यायनिर्णयन द्वारा माध्यस्थम् के संप्रवर्तन का उपबंध किया गया था तथा अनिवार्य न्यायनिर्णयन का आदेश किए जाने के पश्चात् हड़ताल या तालाबन्दी को अवैध घोषित करके इन उपबंधों के अनुपालन को विवश करने की अतिरिक्त शक्ति भी प्रदान की गई थी।

2.7. इस स्थिति को पर्याप्त रूप से समझने के लिए औद्योगिक विवाद अधिनियम के उपबन्धों के प्रति संक्षेप रूप से निर्देश करना आवश्यक होगा। परिभाषा खण्ड में अन्य पदों के साथ "समुचित सरकार" की परिभाषा दी गई है, जिसको अनिवार्य न्यायनिर्णयन के लिए निर्देश करने की शक्ति प्रदान की गई है। धारा 3 में एक कर्म समिति की स्थापना की बात सोची गई है जिसमें नियोजकों और औद्योगिक स्थापन में नियोजित कर्मकारों के प्रतिनिधि होंगे और उस समिति का कार्य नियोजक और कर्मकारों के बीच मैत्रीपूर्ण और अच्छे सम्बन्ध स्थापित करने और उसे बनाए रखने के लिए उपाय करना तथा उस उद्देश्य से, समान हित के विषयों की समीक्षा करने और ऐसे विषयों के सम्बन्ध में किसी मतभेद को दूर करने का प्रयास करना होगा। गुजरात राज्य ने धारा 3 को लागू करने में धाराएं 3क और 3ख भी

जोड़ी है जिनमें संयुक्त प्रबन्ध परिषद् का उपबन्ध है और उस परिषद् के कृत्य भी विहित हैं। यह आसानी से कहा जा सकता है कि ये उपबंध अभी लागू ही नहीं किए गए। तथ्य तो यह है कि भारत के उच्चतम न्यायालय द्वारा मंजूर किए गए एक व्यादेश द्वारा धारा 3 का प्रवर्तन लम्बे समय के लिए रोक दिया गया था। धारा 4 में सुलह अधिकारियों की नियुक्ति की बात सोची गई है। धारा 5 सुलह बोर्डों की स्थापना के बारे में है और धारा 6 में सरकार को जांच न्यायालयों को गठित करने की शक्ति प्रदान की गई है। धारा 7 में एक या अधिक श्रम न्यायालयों को गठित करने की शक्ति प्रदत्त की गई है। ऐसे श्रम न्यायालयों को अधिनियम की द्वितीय अनुसूची में विनिर्दिष्ट किसी विषय के बारे में औद्योगिक विवादों का न्यायनिर्णयन करने की अधिकारिता होगी। धारा 7क, 1956 में जोड़ी गई थी और उसमें समुचित सरकार को द्वितीय या तृतीय अनुसूची में विनिर्दिष्ट किसी विषय के संबंध में औद्योगिक विवादों के न्यायनिर्णयन के लिए एक या अधिक औद्योगिक अधिकरण गठित करने की शक्ति प्रदान की गई है। धारा 7ख भी 1956 में जोड़ी गई थी और इसमें केन्द्रीय सरकार को ऐसे औद्योगिक विवादों के जिनमें राष्ट्रीय महत्व के प्रश्न जुड़े हों या जो ऐसे हैं कि एक से अधिक राज्य में गठित औद्योगिक स्थापनों के हितबद्ध होने अथवा ऐसे विवादों से प्रभावित होने की संभावना है, न्यायनिर्णयन के लिए राष्ट्रीय औद्योगिक अधिकरण गठित करने की शक्ति प्रदान की गई है। 1956 के उसी अधिनियम द्वारा धारा 9क भी जोड़ी गई थी। इसमें नियोजकों को उस स्थिति में परिवर्तन की सूचना देने के लिए बाध्य किया गया है यदि उस परिवर्तन का आशय चतुर्थ अनुसूची में विनिर्दिष्ट विषयों में से किसी के बारे में किसी कर्मकार को लागू सेवा की शर्तों में कोई परिवर्तन करना है। धारा 10 में समुचित सरकार को ऐसा कोई औद्योगिक विवाद जो विद्यमान है या जिसकी आशंका है, बोर्ड को समझौता कराने के लिए अथवा, यथास्थिति, किसी जांच न्यायालय या श्रम न्यायालय या अधिकरण को न्यायनिर्णयन के लिए निर्देशित करने की शक्ति प्रदान की गई है। धारा 10 की उपधारा (5) समुचित सरकार को, न्यायनिर्णयन के लिए औद्योगिक विवाद का निर्देश करते समय, उस निर्देश में ऐसे स्थापन, स्थापन समूह या वर्ग को सम्मिलित करने की शक्ति प्रदान की गई है, चाहे इस प्रकार सम्मिलित किए जाने के समय उस स्थापन, या स्थापन समूह या वर्ग में कोई विवाद विद्यमान हो या आशंकित हो अथवा ऐसा न हो। धारा 22 किसी लोकोपयोगी सेवा में, नियोजक को हड़ताल की, उस धारा में यथा उपबंधित सूचना दिए बिना हड़ताल को प्रतिषिद्ध करती है। धारा 23, किसी श्रम न्यायालय, अधिकरण, या राष्ट्रीय अधिकरण के समक्ष कार्यवाही की अवधि के दौरान और उस कार्यवाही की समाप्ति के पश्चात् दो मास की अवधि के लिए हड़ताल और तालाबन्दी पर आम रोक लगाती है।

2.8. इन उपबन्धों के संक्षिप्त सार से सरसरी तौर पर यह दर्शित होता है कि पक्षकारों को न्यायनिर्णयन का सहारा लेने और सीधी कार्रवाई से बचने के लिए पक्षकारों को विवश करने के उद्देश्य से विद्यमान औद्योगिक विवाद में हस्तक्षेप करने अथवा ऐसी स्थिति का, जिसकी धमकी दी गई है, निषेध करने की शक्ति समुचित सरकार को दी गई थी।

2.9. औद्योगिक विवाद में न्यायनिर्णयन करने के लिए सशक्त प्राधिकारी द्वारा किया गया अधिनिर्णय, धारा 17 के अधीन समुचित सरकार की शक्ति के अधीन रहते हुए, पक्षकारों पर आबद्धकर है।

2.10. श्रम न्यायालयों, औद्योगिक अधिकरणों, राष्ट्रीय औद्योगिक अधिकरणों, सभी को अनिवार्य न्यायनिर्णयन की शक्ति प्राप्त है। उनके अधिनिर्णय को अंतिमता प्राप्त है। कानून में उपर्युक्त न्यायालयों के विनिश्चय के विरुद्ध किसी अपील की व्यवस्था नहीं है।

2.11. संविधान के लागू होने के बाद से उपर्युक्त न्यायालयों के अधिनिर्णयों को, अनुच्छेद 226 के अधीन उच्च न्यायालयों को और अनुच्छेद 32 के अधीन उच्चतम न्यायालय को प्रदत्त न्यायिक पुनर्विलोकन की सांविधानिक शक्ति का अवलम्ब लेकर उत्प्रेषण, प्रतिषेध अथवा यहां तक कि परमादेश रिट द्वारा प्रश्नगत किया जा सकता है। किसी अपील न्यायालय के अभाव में, साधारणतया अधिसंख्य अधिनिर्णयों पर उच्च न्यायालय के समक्ष या भारत के उच्चतम न्यायालय के समक्ष आक्षेप किया जाता है। इस प्रकार संविधान के अधीन असाधारण अधिकारिता का प्रयोग करते हुए उच्च न्यायालयों और उच्चतम न्यायालय सभी व्यावहारिक प्रयोजनों के लिए अपील न्यायालय हो गए हैं।

2.12. औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 को अधिनियमित करने के दो प्रयोजन थे। वे थे समाज के दो ऐसे वर्गों के बीच जिनमें हितों का संघर्ष अन्तर्निहित है, माध्यस्थम्/अनिवार्य न्यायनिर्णयन के लिए रीति और तंत्र (मशीनरी) का उपबंध करना तथा राज्य को औद्योगिक विवादों में, जिन्हें यदि

आपस में लड़ने वाले पक्षकारों पर सीधी कार्रवाई और टकराव द्वारा तय करने के लिए छोड़ दिया जाए तो राष्ट्र के आर्थिक पुनरुद्धार में निश्चय ही बाधा पड़ेगी, प्रभावकारी रूप से मध्यक्षेप करने की शक्ति प्रदान करना था। यदि ताकत के बल पर औद्योगिक विवादों को सुलझाने की कोशिश की जाए तो समाज में अव्यवस्था और अराजकता फैलने की स्पष्ट संभावना है। उच्चतम न्यायालय की राय में, औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 एक हितकर कानून है जिसका उद्देश्य औद्योगिक तनावों की पहले से ही रोकथाम करना, विवादों के निराकरण के लिए क्रियाविधि का उपबंध करना और आवश्यक अवसंरचना स्थापित करना है जिससे कि उत्पादन में भागीदार वर्गों की शक्ति अनुत्पादक विषयों में नष्ट न हो तथा औद्योगिक न्याय के आश्वासन से मैत्रीपूर्ण वातावरण का सृजन हो। औद्योगिक शांति एक राष्ट्रीय आवश्यकता है और इस बारे में विधि के अभाव में किसी भी क्षेत्र में व्यवस्था का अभाव हो जाएगा। अव्यवस्था सृजनात्मकता की शत्रु है और सृजनात्मकता के बिना उत्पादन की हानि होगी। इस प्रकार, औद्योगिक विवाद अधिनियम का महान उद्देश्य संघर्षों को सुलह की या न्यायनिर्णयन की प्रक्रियाओं की ओर मोड़ने के लिए विधिक क्रियाविधि है[11]। कल्याण राज्य की उभरती हुई धारणा का, जो स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से चर्चित है, तात्पर्य कर्मकारों के शोषण का अंत है और उनके लिए एक जीवन निर्वाह मजदूरी, काम की अच्छी दशाएं और श्रम की गरिमा सुनिश्चित करना है। किसी न किसी प्रकार की क्रियाविधि आवश्यक है और जो क्रियाविधि औद्योगिक विवाद अधिनियम का आधार है, उसका उद्देश्य कर्मकारों को विनियमित फायदे प्रदान करना और विधि के सहानुभूतिपूर्ण नियम के अनुसार, प्रबंधतंत्रों और कर्मकारों के बीच वास्तविक या संभावित संघर्षों का निराकरण करना है। उसका उद्देश्य दोनों पक्षों (नियोजक और कर्मकार) को फायदा पहुंचाने के लिए शांतिपूर्ण सहअस्तित्व की व्यावहारिक भावना से संयमित होकर, कर्मकारों की दशाओं को सुधारना है–यह कोई तटस्थ स्थिति नहीं है अपितु अहस्तक्षेप पर रोक लगाना और निर्बल वर्ग के कल्याण के लिए चिन्ता है[12]।

2.13. औद्योगिकरण की तीव्र गति के साथ-साथ सम्पूर्ण देश में अनेक श्रम न्यायालय और औद्योगिक अधिकरण स्थापित करने पड़े हैं। इनमें प्रत्येक न्यायालय को अधिनिर्णय करने की शक्ति प्राप्त है और इन अधिनिर्णयों को अंतिमता प्राप्त है। इस स्थिति में जो बात अन्तर्निहित है वह यह है कि परस्पर विरोधी अधिनिर्णय, विनिश्चय और दृष्टिकोण सामने आएंगे। संविधान के अनुच्छेद 226-227 के अधीन उच्च न्यायालय में जाने से, अधिक से अधिक, राज्य स्तर पर एक प्रकार की समानता आ जाएगी किन्तु अलग-अलग उच्च न्यायालयों का आपस में मतभेद होता है। यह स्थिति उन औद्योगिक स्थापनों के लिए पीड़ाकारक थी जिनकी अन्तर्राजीय संक्रियाएं हैं या जिनकी उत्पादन इकाइयां एक से अधिक राज्यों में हैं और जो भिन्न-भिन्न उच्च न्यायालयों की अधिकारिता के अधीन आते हैं। अंततोगत्वा मामला उच्चतम न्यायालय में ले जाना पड़ता था जो विलम्बकारी और अधिक समय लेने वाली प्रक्रिया थी।

2.14. यहां पर जिस स्थिति की चर्चा की गई है उसकी ओर विधि निर्माताओं का ध्यान आकृष्ट हुआ जो "किसी भी कल्याण राज्य में, औद्योगिक अशांति और औद्योगिक विवादों को संदेह की दृष्टि से नहीं देख सकते हैं"।[13] विधि निर्माताओं ने उन सेवा की शर्तों और फायदों के विषय में, जो औद्योगिक न्यायनिर्णयन के परिणामस्वरूप कर्मकारों को प्राप्त हो सकेंगे, समानता की व्यवस्था करने की आवश्यकता से अवगत होने के कारण औद्योगिक विवाद (अपील अधिकरण) अधिनियम, 1950 अधिनियमित किया। अपील अधिकरण को सम्पूर्ण भारत में अधिकारिता प्राप्त थी। अतः वह भिन्न-भिन्न औद्योगिक अधिकरणों के अधिनिर्णयों को लागू होने वाले मूलभूत सिद्धांतों और मानदण्डों की समानता के उपाय की आवश्यकता का स्वाभाविक उत्तर था। तदनुसार औद्योगिक विवाद (अपील अधिकरण) अधिनियम, 1950 को कानून पुस्तक में सम्मिलित किया गया था। उसमें औद्योगिक अधिकरण के अधिनिर्णयों या विनिश्चयों के विरुद्ध, अधिनियम के उपबंधों के अनुसार, अपील की सुनवाई के लिए श्रम अपील अधिकरण के गठित किए जाने की व्यवस्था थी। उस अधिनियम की धारा 7 में अपील अधिकरण को औद्योगिक अधिकरण के किसी अधिनिर्णय या विनिश्चय के विरुद्ध किसी अपील को तब ग्रहण करने की अधिकारिता प्रदान की गई थी यदि––

(क) अपील में विधि का कोई सारवान प्रश्न अंतर्वलित है, या

(ख) अधिनिर्णयन अथवा विनिश्चय निम्नलिखित विषयों में से किसी के बारे में है, अर्थात् :–

(i) मजदूरी,

(ii) बोनस या यात्रा भत्ता,

(iii) किसी पेंशन निधि या भविष्य निधि में, नियोजक द्वारा संदत्त या संदेय कोई अभिदाय,

(iv) किसी कर्मकार को या उसकी ओर से, उसके नियोजन के स्वरूप के अनुसार उस पर किए गए विशेष व्ययों को चुकाने के लिए, संदत्त या संदेय कोई राशि,

(v) सेवामुक्त किए जाने पर संदेय उपदान,

(vi) श्रेणी अनुसार वर्गीकरण,

(vii) कर्मकारों की छटनी,

(viii) अन्य कोई विषय जो विहित किया जाए।

इस प्रकार औद्योगिक संबंधों का लगभग संपूर्ण क्षेत्र उसके अंतर्गत आ गया था और इन पहलुओं में से किसी के विषय में कोई भी अधिनिर्णय अपील अधिकरण में अपीलनीय हो जाएगा। उस स्थिति में भी जबकि अधिनिर्णयन के अन्तर्गत उपर्युक्त मदों में से कोई मद नहीं है, अपील अधिकरण इस आधार पर अपील ग्रहण कर सकता है कि उस अपील में विधि का कोई सारवान प्रश्न अंतर्वलित है। लगभग सभी अधिनिर्णय अपील अधिकरण में अपीलनीय हो गए। निसंदेह, अखिल भारतीय अधिकारिता और अखिल भारतीय परिप्रेक्ष्य रखने वाला अधिकरण अपनी अपीली अधिकारिता के प्रयोग द्वारा औद्योगिक संबंधों के विषय में समानता ला सकता था जो अन्यथा, भिन्न-भिन्न अधिकरणों द्वारा जिनके अंतर्गत एक ही राज्य में अधिकारिता रखने वाले अधिकरण भी हैं, परस्पर विरोधी अधिनिर्णयों के कारण जंगल के कानून का रूप ले लेते।

2.15. कर्मकारों के प्रमुख राष्ट्रीय संगठन इस अपील अधिकरण से अत्यन्त रुष्ट हो गए। धनी वर्ग अर्थात् नियोजक वित्तीय दृष्टि से सम्पन्न थे और वे मुकद्दमेबाजी को विलासिता कर सकते थे। उन्होंने उस अपील अधिकरण में अनेक अपीलें प्रस्तुत कर दीं और कर्मकारों के अनुसार, इन अपीलों को निपटाने में अत्यधिक विलम्ब हुआ जिसके कारण अधिनिर्णयों का लागू किया जाना रुक गया और इस प्रकार मुकद्दमेबाजी लम्बी खिंच गई। कर्मकारों की मुकद्दमेबाजी में टिकने की शक्ति कमजोर होने के कारण वे इतना अधिक विलम्ब सहन नहीं कर सकते थे जबकि नियोजकों ने यूं ही अपील प्रस्तुत करके मुकद्दमों को लम्बा खींचा और प्रत्येक न्यायिक प्रक्रिया की अंतर्निहित प्रवृत्ति अर्थात्, विलम्ब, का दुरुपयोग किया। निसंदेह, उस समय जो यह समझा जाता था कि अपील अधिकरण में अपीलों को निपटाने में औसतन लगभग दो वर्ष का समय लगता था उससे मुकद्दमा बहुत लम्बा खिंच जाता है, उस अधिकरण को समाप्त कर देने से वह स्थिति फिर वापस आ गई है। कर्मकारों का एक विचार यह भी था कि अपील अधिकरण में उच्च न्यायालयों के सेवानिवृत्त न्यायाधीश नियुक्त होते हैं इससे प्रबंधतंत्र के पक्ष में झुकाव और पक्षपात प्रकट होता है तथा अपील अधिकरण के उन सदस्यों को औद्योगिक संबंधों का कोई ज्ञान नहीं होता। अपीलों का विनिश्चय करने में नितांत कानूनी दृष्टिकोण और सामाजिक न्याय के प्रति प्रतिबद्धता के अभाव से कर्मकारों की भावनाएं और भड़क उठीं और श्रम अपील अधिकरण को समाप्त करने के लिए लगभग एक स्वर से मांग की गई। इसकी प्रतिध्वनि औद्योगिक विवाद (संशोधन और प्रकीर्ण उपबंध) विधेयक, 1955 से संलग्न उद्देश्यों और कारणों के कथन में हुई। उस विधेयक में अन्य बातों के साथ श्रम अपील अधिकरण को समाप्त करने का उपबंध किया गया। उक्त कथन में यह कहा गया था कि 'इस बात की व्यापक आलोचना की गई कि अपील अधिकरण के समक्ष फाइल की गई अपील के निपटारे में लम्बा समय लगता है और उसमें बहुत अधिक खर्च भी होता है जो कर्मकार नहीं कर सकते हैं।' इसके विपरीत, नियोजकों की दलील थी कि अपील अधिकरण ने औद्योगिक अधिनिर्णयों के आधारभूत सिद्धांतों में काफी एकरूपता का समावेश किया है और वह औद्योगिक सम्बन्धों पर अच्छी निर्णयज विधि का निर्माण कर रहा है। उन्होंने इस पर बल दिया कि अपील न्यायालय, अनिवार्य न्यायनिर्णयन का आवश्यक अनुलग्न है तथा औद्योगिक अधिकरणों को और अनिवार्य न्यायनिर्णयन के तरीके को बनाए रखते हुए अपील न्यायालय को समाप्त कर देने से परस्पर विरोधी अधिनर्णयों का एक जंगल फिर से सामने आ जाएगा। अन्ततोगत्वा, लोकतंत्र में संख्या की दृष्टि से मजबूत वर्ग की आवाज का बोलबाला रहा। भूतपूर्व श्रम मंत्री, श्री के०के० देसाई ने औद्योगिक विवाद (संशोधन और प्रकीर्ण उपबंध) विधेयक, 1955 पर चर्चा के दौरान कहा कि "बात यह नहीं है कि न्याय नहीं हो रहा है बल्कि कर्मकारों को यह विश्वास करना चाहिए कि उनके साथ यथा संभव त्वरित रूप से न्याय किया जा रहा है। और इसलिए अपील न्यायालय समाप्त

किया जा रहा है।" इस बारे में संसद् को तथ्य संबंधी आंकड़े नहीं दिये गए कि अधिकरण में की गई अपील में विलम्ब कितना होता है। बहरहाल, औद्योगिक विवाद (संशोधन और प्रकीर्ण उपबंध) विधेयक, 1955 के संलग्न उद्देश्यों और कारणों के कथन में कहा गया था कि औद्योगिक विवाद (अपील अधिकरण) अधिनियम, 1950 को निरसित कर दिया जाए किन्तु यह बात स्वीकार की गई थी कि अपील अधिकरण ने औद्योगिक अधिकरणों में अधिनिर्णयों को लागू आधारिक सिद्धांतों में थोड़ी बहुत एकरूपता प्राप्त की है किन्तु भावी एकरूपता के विचार को औद्योगिक विवादों के शीघ्र निराकरण की अपेक्षाओं के साथ संतुलित करना होगा।[14] यद्यपि कोई औपचारिक जांच नहीं की गई थी तथापि यह प्रतीत होता है कि अपील अधिकरण अपने समक्ष किसी अपील को निपटाने में औसतन दो वर्ष का समय लेता था। अतः अधिनिर्णय का निष्पादन और क्रियान्वयन, अपील प्रस्तुत करके दो वर्ष के लिए टल जाता था। जब यह कहा गया कि औद्योगिक संबंधों में कुछ एकरूपता आवश्यक है--जो अपील अधिकरण ला सका है--तो यह स्वीकार किया गया कि भविष्य में उच्चतम न्यायालय इस बात का निश्चय ही ध्यान रखेगा। इस कथन के साथ श्रम अपील अधिकरण 1956 में औपचारिक रूप से समाप्त कर दिया गया था।

2.16. श्रम अपील अधिकरण के समाप्त किए जाने के बाद से श्रम न्यायालय और औद्योगिक अधिकरण के अधिनिर्णय पर आपत्ति या तो संविधान के अनुच्छेद 226-227 के अधीन उच्च न्यायालय की अधिकारिता का अवलंब लेकर या संविधान के अनुच्छेद 136 के अधीन उच्चतम न्यायालय में विशेष इजाजत याचिका द्वारा की जाती है। कभी-कभी ऐसे न्यायनिर्णयों को भारत के उच्चतम न्यायालय में अनुच्छेद 32 के अधीन रिट याचिका द्वारा प्रश्नगत किया जाता है। संविधान के अनुच्छेद 14 में उपबंध है कि उच्चतम न्यायालय द्वारा घोषित विधि भारत के राज्यक्षेत्र के भीतर सभी न्यायालयों पर, जिनके अंतर्गत अधिकरण और सरकार भी है, आबद्धकर होगी। अतः यह स्पष्ट है कि उच्चतम न्यायालय औद्योगिक सम्बन्धों के विषय में एकरूपता ला सकता है।

2.17. औद्योगिक विवाद बहुधा होते रहते हैं। ऐसे अनेक कानून हैं जो औद्योगिक सम्बन्धों से प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से सम्बद्ध हैं। औद्योगिक श्रमिकों की सेवा शर्तों में सुधार करने के लिए अनेक विधियां अधिनियमित की गई हैं। ये सभी कानून मुकदमेबाजी के लिए उर्वर आधार हैं। निस्संदेह, कुछ कानूनों में कानून के अधीन विवादों के निराकरण के लिए व्यवस्था और न्यायालय तथा अपील न्यायालय के लिए भी उपबंध है। तथापि, सम्पूर्ण देश में औद्योगिक सम्बन्धों में एकरूपता लाने की वांछनीयता को ध्यान में रखना होगा। श्रम अपील न्यायालय के समाप्त किए जाने पर यह कृत्य फिर से उच्चतम न्यायालय के जिम्मे आ गया है। अब यदि उच्चतम न्यायालय इस दिशा में त्वरित रूप से कार्य कर सकता है तो इस रिपोर्ट का मुख्य प्रयोजन समाप्त हो सकता है। यदि श्रम अपील अधिकरण अपने अस्तित्व को उचित ठहरा सकता और जीवित बना रहता है तो इस विषय में नए सिरे से सोचने की आवश्यकता न होती। श्रम अपील अधिकरण जिस अधिनियम द्वारा स्थापित किया गया था उसमें एक मूलभूत त्रुटि थी। यह तो निर्विवाद है कि औद्योगिक विवाद (अपील अधिकरण) अधिनियम, 1950 के अधीन स्थापित अधिकरण संविधान के अनुच्छेद 136 और 227 में प्रयुक्त पद के अर्न्तगत एक अधिकरण था। उस अपील अधिकरण ने विभिन्न राज्यों में बैठकें की। इस स्थिति का संवैधानिक परिणाम यह था कि ऐसे प्रत्येक उच्च न्यायालय को, जिसकी अधिकारिता के भीतर उस अपील अधिकरण ने बैठकें की थी, अनुच्छेद 227 के अधीन उसके अधिनिर्णय की वैधता और शुद्धता की समीक्षा करने की अधिकारिता होगी। इस बात से एक मजेदार स्थिति उत्पन्न हो गई। श्रम अपील अधिकरण के सभी विनिश्चय औद्योगिक अधिकरण और श्रम न्यायालय पर आबद्धकर होंगे और "औद्योगिक अधिकरण" पद की उस अधिनियम की धारा 2 (ग) द्वारा व्यापक परिभाषा की गई है किन्तु फिर भी उच्च न्यायालय को हस्तक्षेप करने की अधिकारिता प्राप्त हो जाने पर भिन्न-भिन्न उच्च न्यायालयों ने असम्य विचार प्रकट किए और राष्ट्रीय एकरूपता एक बार फिर भंग और विघटित हो गई। अखिल भारतीय अधिकारिता रखने वाले श्रम अपील अधिकरण को स्थापित करते समय उच्च न्यायालय की अधिकारिता को अपवर्जित करना उचित नहीं समझा गया था किन्तु यह बात अब संविधान के अनुच्छेद 323ख (3)(घ) के अधीन की जा सकती है। यह बहुत बड़ी खामी अनुत्पादक सिद्ध हुई क्योंकि श्रम अपील अधिकरण भिन्न-भिन्न अधिकरणों के भिन्न-भिन्न अधिनिर्णयों में समानता लाकर औद्योगिक सम्बन्धों में एकरूपता लाने के लिए आशांकित था किन्तु फिर भी उच्च न्यायालय अपनी असाधारण अधिकारिता का प्रयोग करके उस एकरूपता को भंग करने में सफल रहा और इस प्रकार उसे (एकरूपता को) फिर से लाने का काम उच्चतम न्यायालय पर आ पड़ा।

2.18. इस प्रकार अब प्रश्न यह है कि क्या यह विश्वास है कि उच्चतम न्यायालय इस देश में सर्वत्र एकरूपता स्थापित कर सकेगा, पूरा हुआ है। क्रमवर्ती योजनाओं के अधीन औद्योगीकरण की गति बढ़ी है और उसके आवश्यक परिणामस्वरूप औद्योगिक विवादों में वृद्धि हुई है। इस विषय में पब्लिक सैक्टर और प्राइवेट सैक्टर में स्थिति लगभग समान रही और औद्योगिक विवादों की संख्या में बहुत अधिक वृद्धि हुई। परस्पर विरोधी अधिनिर्णयों के कारण औद्योगिक विवाद बढ़े। उच्चतम न्यायालय को औद्योगिक सम्बन्धों के क्षेत्र में थोड़ी बहुत एकरूपता लाने के लिए, अपनी यथासंभव व्यापक अधिकारिता का प्रयोग करते हुए, भिन्न-भिन्न औद्योगिक अधिकरणों और यहां तक कि उच्च न्यायालयों के परस्पर विरोधी विनिश्चयों के सम्बन्ध में कार्यवाही करनी पड़ी। यदि उच्चतम न्यायालय ने यह कार्यत्वरित रूप से किया होता तो और आगे प्रश्न नहीं उठाया जा सकता था। केवल उच्चतम न्यायालय ही उक्त एकरूपता स्थापित कर सकता है। किन्तु उच्चतम न्यायालय में बहुत बड़ी संख्या में अनिर्णीत मुकदमों के कारण श्रम वादों के निपटारे में काफी कमी आई। श्रम वादों के निपटारे में जितनी देर होती थी उसी अनुपात में वर्षानुवर्ष औद्योगिक विवादों में वृद्धि हुई। उच्चतम न्यायालय द्वारा श्रम मामलों के निपटारे में विलम्ब धीरे-धीरे बढ़ता जा रहा है। श्रम विधियों के अधीन ऐसी अपीलें जिनमें संवैधानिक निर्वचन का कोई प्रश्न जुड़ा नहीं है, उच्चतम न्यायालय में अनुच्छेद 136 के अधीन विशेष इजाजत अर्जी के रूप में लाई जा रही है और वे वर्ष 1973 से लम्बित हैं। 1 अक्तूबर, 1987 को ऐसी कुल लम्बित अपीलों की संख्या 690 थी (देखिए परिशिष्ट 3--भाग क)। इनमें से कुछ मामले तो एक दशक से भी पुराने हैं। क्या यह मान लिया जाए कि दस वर्ष की इस अवधि के दौरान समान प्रकृति का कोई भी औद्योगिक विवाद और कहीं भी उत्पन्न नहीं हुआ? क्या औद्योगिक सम्बन्धों में एकरूपता स्थापित करने की दृष्टि से उसे दस वर्ष तक केवल इसलिए लम्बित रखा जा सकता है कि उच्चतम न्यायालय तब समय निकाल कर उस पर अपना विनिश्चय सुनाए जो सभी अधिकरणों और न्यायालयों पर आबद्धकर हो? यहां पर कुछ रहस्योद्घाटी दृष्टांतों का उल्लेख किया जा सकता है। श्रमजीवी पत्रकार और अन्य समाचारपत्र कर्मचारी (सेवा की शर्तें) और प्रकीर्ण उपबन्ध अधिनियम, 1955 के अधीन श्रमजीवी और गैर श्रमजीवी पत्रकारों की उपलब्धियों का पुनरीक्षण करने के लिए एक बोर्ड जून 1975 में उच्चतम न्यायालय के सेवानिवृत्त न्यायाधीश, न्यायमूर्ति श्री पालेकर की अध्यक्षता में गठित किया गया था। उस मजदूरी बोर्ड ने अपना न्यायनिर्णयन 12-8-1980 को दिया। कुछ समाचारपत्र स्थापनों ने वर्ष 1980 में उच्चतम न्यायालय में उस अधिनिर्णय पर आपत्ति की। उस रिट याचिका का उच्चतम न्यायालय में अभी निपटारा होना बाकी है। इसी बीच, 11-7-1985 को न्यायमूर्ति बछावत की अध्यक्षता में एक नया मजदूरी बोर्ड गठित किया गया है। मौजूदा मजदूरी बोर्ड का न्यायनिर्णय उस पूर्वतर न्यायनिर्णय को, जिस पर आपत्ति की गई है, अतिष्ठित कर देगा। ऐसी परिस्थिति में मौजूदा मजदूरी बोर्ड को उच्चतम न्यायालय से क्या मार्गदर्शन प्राप्त होगा? उच्चतम न्यायालय के समक्ष आने वाले सभी मामलों के, जिनके अन्तर्गत श्रम विधियों के अधीन मामले भी हैं, निपटारे में इतना अधिक विलम्ब होता है कि यह विश्वास झूठा साबित हो जाता है कि उच्चतम न्यायालय अपना निर्णय त्वरित रूप से सुनाएगा और एकरूपता स्थापित करने में सहायक होगा। उच्चतम न्यायालय के अभाव में, श्रम अपील अधिकरण के समाप्त किए जाने पर सभी श्रम न्यायालयों और औद्योगिक अधिकरणों के अधिनिर्णयों को कुछ राज्य कानूनों के अधीन छोड़कर, लगभग अंतिमता प्राप्त थी। इसका परिणाम यह हुआ कि औद्योगिक अधिकरणों के अधिनिर्णयों में एकरूपता का बहुत अधिक अभाव है और मुकदमेबाजी बढ़ी है तथा औद्योगिक विवादों का भी प्रसार हुआ है जिससे अक्सर औद्योगिक शांति और मैत्रीभाव को खतरा पैदा होता है और योजना की दस्तावेजों में निर्धारित लक्ष्य अस्तव्यस्त हो जाता है।

2.19. औद्योगिक रुग्णता अब बहुत अधिक दिखाई पड़ती है। हजारों इकाइयां बन्द हो गई हैं। गुजरात की आर्थिक गतिविधि का आधार कपड़ा उद्योग नष्ट हो चुका है। हजारों कर्मकार बेरोजगार हो गए हैं। क्या इस स्थिति का उपचार किसी न्यायिक या न्यायिक कल्प प्रक्रिया द्वारा हो सकता है? इस सम्बन्ध में पूरी जांच-पड़ताल तो श्रम न्यायालय को करनी होगी। यहां पर तो उसके केवल एक पक्ष की समीक्षा की जा सकती है अर्थात् उच्चतम न्यायालय के नीचे एक अखिल भारतीय परिप्रेक्ष्य और अधिकारिता रखने वाले निकाय की स्थापना करके औद्योगिक सम्बन्धों में एकरूपता लाने के लिए एक तन्त्र की व्यवस्था करना जिससे कि औद्योगिक संघर्ष कम किया जा सके।

2.20. अखिल भारतीय अधिकारिता और परिप्रेक्ष्य वाले एक ऐसे न्यायालय का उपबन्ध करने के प्रश्न पर लगभग मतैक्य है जिसमें अपील की जा सके या जिसे कुछ मूल अधिकारिता भी प्राप्त हो जिससे

कि औद्योगिक सम्बन्धों में वांछित एकरूपता लाई जा सके। श्रम अपील अधिकरण के समाप्त किए जाने के बाद से, अनुच्छेद 136 के अधीन अधिकारिता का अवलंब लेकर अनेक अधिनिर्णयों पर उच्चतम न्यायालय में आपत्ति की गई थी। विशेष इजाजत अर्जी से उत्पन्न होने वाली अपीलों की सुनवाई दशकों बाद हुई। श्रम अपील न्यायालय में उसके समक्ष अपील के निपटारे में औसतन दो वर्ष का समय लगता था किन्तु जब हम उच्चतम न्यायालय में होने वाले विलम्ब को देखते हैं तो हमें लगता है कि दो वर्ष का वह समय कुछ भी नहीं था। श्रम अपील अधिकरण को समाप्त करने के समर्थकों का विश्वास था उच्चतम न्यायालय श्रम विधियों के अधीन मामलों का शीघ्रता से निपटारा करेगा जिससे कि वह एकरूपता आ सके जिसकी बहुत आवश्यकता है। अब उन्हें इस सच्चाई का अनुभव हो गया है कि उच्चतम न्यायालय इस कार्य को पूरा नहीं कर सकेगा। तथ्य तो यह है कि उच्चतम न्यायालय, अपील के लिए नियमित न्यायालय के लिए आशयित नहीं था। अनुच्छेद 136 उच्चतम न्यायालय को व्यापकतम अधिकारिता प्रदान करता है किन्तु उस अधिकारिता का प्रयोग सार्वजनिक महत्व के विधिक प्रश्नों के संबंध में कार्यवाही के लिए किया जाता है। कहा जाता है कि यदि कोई विधि प्रश्न विवाद के दो पक्षकारों के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण हो तब भी केवल इस आधार पर उच्चतम न्यायालय से विशेष अर्जी को ग्रहण करने के लिए नहीं कहा जा सकता है। विधि प्रश्न को महत्वपूर्ण विधि प्रश्न का जामा नहीं पहनाया जा सकता है। विधि प्रश्न महत्वपूर्ण होने के साथ-साथ समुदाय के लिये महत्वपूर्ण सार्वजनिक महत्व का प्रश्न भी होना चाहिए और तभी उच्चतम न्यायालय विशेष इजाजत के लिए अर्जी को ग्रहण कर सकेगा। निस्संदेह यह व्यापकतम अधिकारिता उच्चतम न्यायालय को इसलिए प्रदान की गई थी कि अधिकारिता के अभाव के बारे में तकनीकी तर्कों से अवरुद्ध हुए बिना वह कोने-कोने तक पहुंच कर वहां न्याय दिला सकता है जहां यह प्रतीत हो कि घोर अन्याय हुआ है। किन्तु भारत जैसे विशाल देश में जहां मुकदमेबाजी की परम्पराएं बहुत स्पष्ट हैं[15], यदि उच्चतम न्यायालय केवल इस धारणा के आधार पर कि औद्योगिक अधिकरण के किसी अधिनिर्णय द्वारा किसी पक्षकार के प्रति अन्याय हुआ है, उस अधिनिर्णय की समीक्षा करने के लिए सहमत हो जाता है और उसकी समीक्षा करता है तो उस स्थिति में यह अन्तर्निहित है कि उसके समक्ष आने वाले मामलों को निपटाने में अत्यधिक विलम्ब होगा और तद्नुसार वह अनुत्पादक सिद्ध होगा। यही वर्तमान स्थिति है। अतः इस बात की फिर से मांग की जा रही है कि औद्योगिक अधिकरणों के ऊपर एक अपील न्यायालय होना चाहिए जिसे सम्पूर्ण भारत पर अधिकारिता प्राप्त हो। सुव्यवस्थित न्यायिक प्रणाली में अधिकार के रूप में एक अपील की व्यवस्था इस सुरक्षा के साथ कि समुचित मामलों में इजाजत लेकर सम्भवतः और आगे अपील की जा सकेगी, नितान्त आवश्यक समझी जाती है। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन ने सिफारिश की थी कि जिस कर्मकार की सेवा समाप्त की जाती है उसे तटस्थ निकाय में अपील करने का अधिकार अवश्य मिलना चाहिए।[16] अधिकार के रूप में उच्चतम न्यायालय नियमित अपीलों के लिए न्यायालय नहीं हो सकता है। अतः आज एक मध्यवर्ती अपील न्यायालय की आवश्यकता है। इस बात में पुनः अभिरुचि दिखाई देती है कि यदि श्रम अपील अधिकरण को पुनरुज्जीवित नहीं किया जा सकता है तो ऐसे न्यायालय की स्थापना की जाए।

2.21. प्रथम विधि आयोग ने सिफारिश की थी कि विधान-मण्डल को चाहिए कि वह अपील अधिकरण को पुनरुज्जीवित करके अथवा उच्च न्यायालयों को उपयुक्त मामलों में अपील की सुनवाई करने की शक्ति प्रदान करके श्रम मामलों में अपील के पर्याप्त अधिकार का उपबंध करे।[17] श्रम मामलों में अपील की सुनवाई करने की शक्ति उच्च न्यायालय को प्रदान करना रोग से भी बुरा उपचार होगा। उच्च न्यायालय को औद्योगिक अधिकरण के अथवा श्रम अपील अधिकरण के भी अधिनिर्णय के विरुद्ध रिट याचिका ग्रहण करने की अधिकारिता प्राप्त थी। उसका जो परिणाम हुआ वह सभी को ज्ञात है। समस्या और भी बढ़ गई।

2.22. अखिल भारतीय व्यवसाय संघ कांग्रेस के प्रतिनिधियों ने औद्योगिक अधिकरण के अधिनिर्णय के विरुद्ध अपीलें ग्रहण करने के लिये एक अखिल भारतीय न्यायालय की स्थापना को सिद्धान्त रूप में स्वीकार करने के साथ-साथ यह निवेदन किया कि उच्च न्यायालय की अधिकारिता को अपवर्जित कर दिया जाना चाहिए। यहां तक सुझाव दिया गया कि उच्चतम न्यायालय की रिट अधिकारिता अपवर्जित कर दी जाए। यह तो अनुचित होगा। उस कांग्रेस ने यह राय भी व्यक्त की कि जिस कानून द्वारा ऐसा न्यायालय स्थापित किया जाए उसमें एक समय सीमा का उपबन्ध अवश्य किया जाए जिसके भीतर, ऐसे न्यायालय के समक्ष आने वाली अपीलों का निपटारा अवश्य हो जाना चाहिए।

2.23. भारतीय राष्ट्रीय व्यवसाय संघ कांग्रेस की यह राय थी कि या तो उच्चतम न्यायालय की विशेष पीठ में अथवा पुनरुज्जीवित श्रम अपील अधिकरण में कम से कम एक अपील की अनुज्ञा दी जानी चाहिए। बहरहाल, भा० रा० व्य० संघ कांग्रेस श्रम अपील अधिकरण को समाप्त किए जाने की मांग करने में अगुआ थी किन्तु उसने बदलती हुई परिस्थितियों को देखकर अपनी मांग पर पुनः विचार किया और अब वह एक ऐसे अपील न्यायालय के पक्ष में है जिसे अखिल भारतीय अधिकारिता और परिप्रेक्ष्य प्राप्त हो।

2.24. विधि आयोग ने इस समस्या पर दो भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणों से विचार किया है। विधि आयोग की अभिरुचि मुख्य रूप से उच्च न्यायालयों और उच्चतम न्यायालय पर कार्यभार को कम करने की दृष्टि से न्याय प्रशासन के विकेन्द्रीकरण में है। इसके साथ ही उसकी यह राय है कि श्रम विधियों के अधीन उत्पन्न होने वाले मामलों के लिए औद्योगिक सम्बन्धों, मानविकी, सामाजिक विज्ञान, योजनाबद्ध अर्थ-व्यवस्था के उद्देश्यों, योजना के लक्ष्यों और इन सब से बढ़ कर इसमें इसके पूर्व उल्लिखित संविधान के उद्देश्यों की प्राप्ति का विशेष ज्ञान अपेक्षित है। जैसा कि इससे पूर्व कहा जा चुका है, यदि वकीलगण अधिकाधिक विशेषज्ञता प्राप्त होते जा रहे हैं जैसे कि श्रम वकील, कर वकील, पेटेन्ट वकील, यहां तक कि अपकृत्य वकील, तो यह विशेषज्ञता न्यायालयों और न्यायिक अधिक्रम में प्रतिबिम्बित क्यों नहीं होनी चाहिए? यह धारणा कि अधिकतर व्यक्ति विवादों के निराकरण के लिए काला चोगा पहनने वाले न्यायाधीशों, अच्छे वस्त्र पहने हुए वकीलों और दिलहेदार (पैनल्ड) न्यायालय कक्षों को चाहते हैं, एक मिथक है। दर्द से पीड़ित व्यक्तियों के समान ही समस्याओं से पीड़ित व्यक्ति राहत चाहते हैं और वे उसे यथाशीघ्र पाना चाहते हैं।[18] इस रिपोर्ट का लक्ष्य वर्तमान निराशाजनक और दुःखद परिस्थिति को ध्यान में रखते हुए, उक्त तीनों उद्देश्यों को प्राप्त करना है।

अध्याय 3

इस प्रश्न पर विगत काल में निकायों का दृष्टिकोण

3.1. विधि आयोग ने न्यायिक प्रशासन के सुधार पर अपनी चौदहवीं रिपोर्ट सितम्बर, 1958 म प्रस्तुत की थी। उस समय तक श्रम अपील अधिकरण समाप्त किया जा चुका था। विधि आयोग ने उच्चतम न्यायालय में कार्य के अंतर्वाह की समीक्षा करते समय इस तथ्य पर विशेष ध्यान दिया था कि उस न्यायालय को विभिन्न श्रम अधिकरणों के विनिश्चयों के विरुद्ध अपील करने की विशेष इजाजत मंजूर करनी पड़ती थी। यह देखा गया कि वर्ष, 1956 में श्रम अधिकरणों के विनिश्चयों के विरुद्ध 257 विशेष इजाजत अर्जियां मंजूर की गई थीं। जिनमें से 140 अर्जियां अनुज्ञात हुई। आयोग की राय थी कि श्रम मामलों में ग्रहण की गई इतनी अधिक संख्या में अपीलों से उत्पन्न हुई परिस्थिति दो दृष्टि से चिंता का विषय है। पहला प्रभाव यह देखा गया कि उच्चतम न्यायालय में न्यायाधीशों की संख्या बढ़ाए जाने के बावजूद उच्चतम न्यायालय में कार्य अवरुद्ध हो गया और दूसरी बात यह है कि उच्चतम न्यायालय में संस्थित किए जाने वाले मामलों की बढ़ती हुई संख्या के मुकाबले में उनका निपटारा कम था। आयोग के अनुसार, एक प्रकार से ये विषय उस न्यायालय पर थोपे गए हैं क्योंकि वह न्यायालय ऐसे विनिश्चयों के, जो मनमाने और स्वेच्छाचारी तथा विधि और तैसंगिक न्याय के जाने माने सिद्धांतों की अवहेलना करके दिए गए प्रतीत होते थे, विरुद्ध अपीलें ग्रहण करने से इंकार नहीं कर सकता था। आयोग के अनुसार, इन मामलों में उच्चतम न्यायालय को किए गए अधिसंख्य विशेष इजाजत आवेदन उसी समय किए गए जब श्रम अपील अधिकरण को समाप्त किया गया। जिस परिस्थिति पर ध्यान दिया गया वह यह थी कि औद्योगिक अधिकरणों के विनिश्चयों के विरुद्ध किसी भी न्यायालय में कोई अपील नहीं हो सकती थी। तदनुसार, अधिकतर मामलों में उच्चतम न्यायालय में एक विशेष इजाजत अर्जी दाखिल की जाती थी जिसमें यह दलील दी जाती थी कि वह विनिश्चय अनुचित और मनमाना है। इस तथ्य के कारण कि उच्च न्यायालय द्वारा संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन अनुतोष उत्प्रेषण रिट द्वारा दिया जाएगा जो उच्च न्यायालय को औद्योगिक अधिकरण के अधिनिर्णय/आदेश को रद्द करने के लिए अनुज्ञात करेगी किन्तु उच्च न्यायालय अपना विनिश्चय स्वयं नहीं कर सकता है और उसे अधिकरण के विनिश्चय के स्थान पर प्रतिस्थापित नहीं कर सकता है, अनुच्छेद 136 के अधीन उच्चतम न्यायालय में ऐसे मामलों की भरमार अपरिहार्य है। इस स्थिति को देखकर प्रथम विधि आयोग की राय यह थी कि :—

> "अतः यह अनिवार्य है कि विधान-मण्डल को हस्तक्षेप करके इन मामलों में अपील के पर्याप्त अधिकार के लिए उपबंध करना चाहिए। अपील का ऐसे अधिकार का उपबंध स्वयं श्रम विधान के अधीन अपील अधिकरणों को गठित करके या उपयुक्त मामलों में उच्च न्यायालय को अपील का अधिकार प्रदान करके किया जा सकता है।"[19]

3.2. आप को याद होगा कि 1958 में विधि आयोग द्वारा देखी गई परिस्थिति श्रम अपील अधिकरण के समाप्त किए जाने का उभरता हुआ चित्र था और उस समय वह परिस्थिति उतनी नहीं बिगड़ी थी जितनी कि अब। नवीनतम परिस्थिति तो और भी दुखद है। आंकड़े स्वयं बोलते हैं। देखिए वे क्या कहते हैं—18-11-1987 को संसद् को दी गई जानकारी के अनुसार 14,82,450 मामले (देखिए परिशिष्ट 4) एक पहलू जिस पर विधि आयोग दुर्भाग्यवश ध्यान नहीं दे सका यह था कि श्रम अपील अधिकरण के समाप्त किए जाने पर इस देश में सर्वत्र बिखरे हुए औद्योगिक अधिकरणों को संवैधानिक उपचारों के अधीन रहते हुए अंतिमता प्राप्त थी। अखिल भारतीय स्तर पर ऐसा कोई निकाय नहीं था जो इस विषय में एकरूपता प्रदान कर सकता—यह एक ऐसा कृत्य था जिसका निर्वहन श्रम अपील अधिकरण करता था। औद्योगिक अधिकरणों के मजदूरी, मंहगाई भत्ते, सेवानिवृत्ति फायदों, भिन्न-भिन्न भत्तों के प्रश्न पर अधिनिर्णय को यदि किसी समान बिन्दु पर नहीं लाया जाता तो उनसे संघर्ष और अव्यवस्था होने की संभावना थी। इस निमित्त एकरूपता केवल अखिल भारतीय अधिकारिता और राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य रखने वाले अपील अधिकरण द्वारा लागू की जा सकती थी। उच्च न्यायालय को औद्योगिक अधिकरण के अधिनिर्णयों पर

अपीली अधिकारिता प्रदान करने से न केवल इस विषय में स्थिति में सुधार नहीं होगा बल्कि वांछित एकरूपता छिन्न-भिन्न हो जाएगी। श्रम अपील अधिकरण के समाप्त हो जाने पर एकरूपता का अभाव स्पष्ट रूप से प्रकट हो गया।

3.3. भारत सरकार ने श्रमिकों से संबंधित विभिन्न विषयों के व्यापक पुनर्विलोकन के लिए एक आयोग का गठन किया था जिसके अध्यक्ष उच्चतम न्यायालय के (सेवानिवृत्त) मुख्य न्यायाधिपति न्यायमूर्ति पी० बी० गजेन्द्रगडकर थे। उस आयोग ने जिन महत्वपूर्ण पहलुओं पर विचार किया उनमें से एक पहलू व्यापार विवाद अधिनियम, 1929 से आरंभ करके औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 तक औद्योगिक विवादों के निपटारे में हस्तक्षेप करने की राज्य की शक्ति है। यह स्वीकार करते हुए कि अनसुलझे विवाद के निपटारे का अंतिम विधिक उपचार समुचित सरकार द्वारा उसको न्याय निर्णयन के लिए निर्देशित करना है, उस आयोग ने यह टिप्पणी की कि विगत बीस वर्षों के दौरान न्यायनिर्णयन तंत्र ने काम की शर्तों और श्रमिक-प्रबंध संबंधों के अनेक पहलुओं पर काफी प्रभाव डाला है। यह देखा गया है कि "न्यायनिर्णयन विलम्बकारी, खर्चीला और यहां तक कि विभेदकारी है क्योंकि निर्देश की शक्ति समुचित सरकार में निहित है"। उसकी यह राय भी थी कि "कुल मिलाकर वह (न्यायनिर्णयन) औद्योगिक शांति प्राप्त करने में असफल रहा है"। आयोग ने अनुभव किया कि उसने जो कमियां पाई वे हो सकता है बढ़ा चढ़ा कर कही गई हों। उसने कहा कि सामूहिक सौदाकारी को और अधिक व्याप्ति देनी चाहिए। अंततोगत्वा उसने सिफारिश की कि ऐसे विवादों को, मोटे तौर पर जिनके अंतर्गत औद्योगिक विवाद अधिनियम की तृतीय अनुसूची में सूचीबद्ध विषय आते हैं निपटाने के लिए राष्ट्रीय और राज्य स्तरों पर एक औद्योगिक संबंध आयोग स्थापित किया जाना चाहिए। औद्योगिक संबंध आयोग की व्यापक रूपरेखा तथा आयोग के अध्यक्ष और न्यायिक और गैर-न्यायिक सदस्यों की नियुक्ति का तरीका बताया गया था। विवादों के निपटारे की प्रक्रिया तैयार की गई थी। यह आयोग औद्योगिक अधिकरणों और राष्ट्रीय औद्योगिक अधिकरण का स्थान लेने वाला था। प्रत्येक राज्य में श्रम न्यायालय स्थापित किया जाना था जिसकी अध्यक्षता न्यायिक सदस्यों को करनी थी तथा यह व्यवस्था की गई थी कि कतिपय स्पष्ट रूप से परिनिश्चित मामलों में श्रम न्यायालय के विनिश्चय के विरुद्ध अपील उस उच्च न्यायालय में हो सकती है कि जिसकी अधिकारिता के भीतर वह न्यायालय स्थित है।[20] उन सिफारिशों के संबंध में कोई कार्रवाई नहीं की गई।

3.4. 17 और 18 सितम्बर, 1982 को हुए राष्ट्रीय श्रम सम्मेलन ने गुजरात के तत्कालीन वित्त और श्रम मंत्री श्री सनत मेहता की अध्यक्षता में एक समिति ने सिफारिश की कि औद्योगिक संबंध के विषय में नए अधिनियम में स्वतंत्र औद्योगिक संबंध आयोगों की स्थापना तथा संगठन, ढांचा अध्यक्ष, सदस्यों और अधीनस्थ अधिकारियों और कर्मचारियों की अर्हताएं वही होनी चाहिएं जो श्रम पर राष्ट्रीय आयोग की सिफारिशों में दी गई हैं। उसने सिफारिश की कि स्थायी श्रम न्यायालय स्थापित किए जाएं जो औद्योगिक संबंध आयोग के संपूर्ण पर्यवेक्षण के अधीन कार्य करेगा और वे अधिकारों और बाध्यताओं, अधिनिर्णयों के निर्वचन और क्रियान्वयन आदि से संबंधित विवादों का निपटारा करेंगे। उस रिपोर्ट को पूरी तौर पर पढ़ने पर यह प्रकट होता है कि केन्द्र में और राज्य स्तर पर औद्योगिक संबंध आयोग को आरंभिक अधिकारिता प्राप्त होनी थी।

3.5. श्री सनत मेहता की अध्यक्षता वाली समिति की रिपोर्ट मिलने पर स्थायी श्रम समिति ने इस निमित्त पुरःस्थापित किए जाने वाले विधान की अवसंरचना तैयार की। राज्य स्तरीय औद्योगिक आयोग को श्रम न्यायालयों के आदेशों और विनिश्चयों पर अपीली अधिकारिता प्राप्त होनी थी। केन्द्र में औद्योगिक संबंध आयोग को आरंभिक और अपीली अधिकारिता दोनों ही प्राप्त होंगी।

3.6. 1950 में श्रम अपील अधिकरण की स्थापना के समय से लेकर श्री सनत कुमार मेहता की अध्यक्षता वाली समिति की सिफारिशों तक और उसकी सिफारिशों के परिणामस्वरूप स्थायी श्रम समिति द्वारा तैयार की गई अवसंरचना तक असंदिग्ध रूप से यह विचार उभर कर सामने आता है कि राष्ट्रीय स्तर पर एक ऐसा न्यायालय होना चाहिए जिसे आरंभिक और अपीली अधिकारिता, दोनों ही प्राप्त हों, जो उस निकाय को औद्योगिक संबंधों के विषय में एक अखिल भारतीय परिप्रेक्ष्य जोड़ने के लिए समर्थ बनाएंगी। यह आवश्यक है कि ऐसे निकाय में ऐसे व्यक्ति हों जिन्हें श्रम समस्याओं, आर्थिक योजना, धन के उचित और न्यायपूर्ण वितरण, सामाजिक आर्थिक न्याय और उन विधिक सूत्रों का जो उसे मामलों को शीघ्र और प्रभावी रूप से निपटाने के लिए समर्थ बनाएंगे, प्रगाढ़ ज्ञान हों। यह बात भी स्पष्ट रूप से उभर

कर आती है कि श्रम मामलों में उच्च न्यायालय की अधिकारिता को समाप्त कर दिया जाना चाहिए जिससे कि भिन्न-भिन्न उच्च न्यायालयों द्वारा समान हित के मामलों में व्यक्त भिन्न-भिन्न विचारों से उत्पन्न होने वाली अव्यवस्था से बचा जा सके। वर्तमान दृष्टिकोण यह है कि इसमें जो लाभ बताए गए हैं उनके अलावा इस नए ढांचे से उच्च न्यायालयों और उच्चतम न्यायालय में कार्यभार को कम करने में मदद मिलेगी क्योंकि श्रम मामलों में उच्च न्यायालय की अधिकारिता समाप्त कर दी जाएगी और अनुच्छेद 136 के अधीन उच्चतम न्यायालय की अधिकारिता का प्रयोग बहुत कम किया जाएगा क्योंकि अखिल भारतीय अधिकारिता वाले एक विशेषज्ञ निकाय ने मामले की समीक्षा की है। यदि वर्तमान दृष्टिकोण का कोई औचित्य आवश्यक है तो यही वह औचित्य है।

अध्याय 4

दृष्टिकोण और औचित्य

4.1. विधि आयोग से अपेक्षा की गई थी कि वह न्यायिक सुधारों के उपायों का अध्ययन करे और अन्य बातों के साथ, उपयुक्त क्षेत्रों और केन्द्रों में परिनिश्चित अधिकारिता और शक्तियों सहित सहभागी न्याय प्रणाली स्थापित करके न्याय प्रशासन प्रणाली के विकेंद्रीकरण की और उच्चतम न्यायालय तथा उच्च न्यायालयों में कार्य की मात्रा को कम करने के लिए न्यायिक अधिक्रम के भीतर अन्य स्तरों या प्रणालियों की स्थापना की आवश्यकता पर सिफारिशें करें। सौंपे गए काम में, न्यायिक सुधार के अध्ययन के संदर्भ में, निर्धारित इन दो उद्देश्यों का प्रभाव हमारे दृष्टिकोण पर अवश्य पड़ना था और बहुत कुछ ऐसा हुआ भी।

4.2. सहभागी न्याय के प्रश्न पर वर्तमान विधि आयोग ने सहभागी आधार पर न्याय प्रणाली को रूप देने के अकाट्य, युक्तियुक्त और व्यापक कारण बताए हैं। ग्राम न्यायालय पर रिपोर्ट[21] में, ग्रामीण क्षेत्रों से उत्पन्न होने वाले विवादों को निपटाने के लिए एक अभिनव निकाय की सिफारिश करते हुए आयोग ने राज्य न्यायालयों के विद्यमान प्रतिमान के स्थान पर सहभागी न्याय की आवश्यकता की पूर्ति करने वाले अविशेषज्ञ न्यायाधीशों वाला एक न्यायालय प्रतिस्थापित करने की आवश्यकता की व्यापक समीक्षा की थी। प्रादेशिक और जातीय दोनों स्तरों पर पंच प्रणाली में सहभागी न्याय की विशेषताएं हैं। महाराष्ट्र की दक्षिण-पूर्व सीमा पर रहने वाली एक जनजाति है जिसका नाम नन्दीवाला है। यह एक अनुसूचित जनजाति है। यूनानी नगर राज्यों के समान न्याय करने के उद्देश्य से यह संपूर्ण समुदाय एक निकाय के रूप में गठित होता है। विचार विमर्श का मार्ग दर्शन बाहर का एक व्यक्ति करता है जिसे गुरु कहते हैं। इस जनजाति के सदस्यों के बीच उत्पन्न होने वाले ऐसे विवादों को जो उस निकाय के समक्ष लाए जाते हैं, निपटाने में संपूर्ण जनजाति भाग लेती है। जहां किसी विवाद को निपटाने में संपूर्ण जनजाति भाग लेती है वहां सहभागी न्याय का अति आदर्श नमूना होता है। किन्तु व्यावहारिक बातें आदर्श से भारी पड़ती हैं। अतः अनेक स्थानीय क्षेत्रों में उनके अपने प्रादेशिक पंच हैं और कुछ जातियों में भी उनके जातीय पंच हैं। विधि आयोग को ऐसी कोई जानकारी नहीं है कि जातीय पंच अत्याचार करते हैं। इस समय उसके सहभागी न्याय वाले पक्ष पर ही विचार किया जा रहा है। मैग्रा कार्टा में पीयरों (समकक्ष व्यक्तियों) द्वारा न्याय की एक मांग थी। यदि न्यायाधीश काला चोगाधारी कोई श्रेष्ठ जन नहीं है बल्कि अपने इलाके का अपने ही स्तर का कोई व्यक्ति है जो अपनी भाषा में बोलता चालता है तो किसी मुकदमे के पक्षकारों में उस पर अधिक विश्वास होगा। साम्राज्यीय (शाही) शासकों के अधीन, संपूर्ण न्याय प्रणाली में एक परिवर्तन हुआ और राज्य की न्यायिक शक्ति का प्रयोग राज्य न्यायालयों द्वारा किया जाने लगा। यह एक गैर-सहभागी नमूना था। धीरे-धीरे और अगोचर रूप से, जब कि इस गैर-सहभागी नमूने ने बाह्य सम्मान की एक आभा जोड़ी, वह न्याय के उपभोक्ताओं में विश्वास जगाने में असफल रहा। यह गैर-सहभागी न्याय का नमूना समय के साथ बहुत औपचारिक, कानूनी, व्यावसायिक व्यक्तियों वाला, विलम्बकारी, तकनीकी और अतिविस्तृत बन गया। इसके अनन्य प्रक्रिया नियमों, विदेशी भाषा में उसके विचार विमर्श और उसके अति तकनीकी दृष्टिकोण के कारण न्याय अवास्तविक बन गया। न्याय करने वालों और उस प्रणाली के उपभोक्ता के बीच एक गहरी खाई बन गई। अतः सहभागी न्याय ने, जिसके अनेक लाभों की चर्चा पहले की जा चुकी है, इस आयोग के विचार विमर्श का मार्ग दर्शन किया है और वस्तुतः मार्ग निर्धारित किया है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, सौंपे गए काम में भी विधि आयोग से अपेक्षा की गई है कि वह उपयुक्त क्षेत्रों और केन्द्रों में परिनिश्चित अधिकारिता और शक्तियों वाली सहभागी न्याय प्रणाली को स्थापित करने की सिफारिश करे।

4.3. इस संबंध में दूसरा उद्देश्य जिसने आयोग के दृष्टिकोण को प्रभावित किया है। न्याय प्रशासन प्रणाली में विकेन्द्रीकरण लागू करना है। न्याय प्रशासन प्रणाली के विकेन्द्रीकरण के दो स्पष्ट फायदे हैं। संक्षेप में, वे हैं—सामान्य न्यायालयों के विरुद्ध विशेषज्ञ न्यायालय और परिणामस्वरूप ऐसे अधिकरणों के जिनमें विशेषज्ञ नियुक्त हैं, समक्ष आने वाले मामलों और संविदाओं का त्वरित निपटारा।

4.4. संबंधित पक्षकारों, समाज और जनता के हित में, औद्योगिक विवादों का यथाशीघ्र निपटारा किया जाना आवश्यक है। औद्योगिक विवादों का न्याय निर्णयन का स्वरूप न्यायिक कल्प है। यह तो ठीक है कि न्याय निर्णायक के निर्णय में कुछ विधिक सूत्रों का समावेश होगा किंतु कुल मिला कर, औद्योगिक

न्यायनिर्णयन के लिए ऐसे दृष्टिकोण की आवश्यकता होती है जो अपने व्यापक अर्थ में सामाजिक–आर्थिक न्याय के विचार से प्रेरित हो। औद्योगिक न्याय निर्णायक को राज्य नीति के निदेशक सिद्धांतों का ध्यान रखना होता है जो उससे अपेक्षा करते हैं कि वह अपने निर्णय को ऐसा रूप दे जिससे कि सामाजिक–आर्थिक न्याय और प्रास्थिति तथा आय में असमानता को समाप्त करने से संबंधित राज्य नीति के निदेशक सिद्धांतों को प्रभावकारी रूप से प्रवृत्त किया जा सके। यह दृष्टिकोण संवैधानिक उद्देश्यों और लक्ष्यों पर आधारित है। औद्योगिक न्याय निर्णयन की शक्ति रखने वाले व्यक्ति को अन्य बातों के अलावा, सामाजिक-आर्थिक न्याय के मान, औद्योगिक संबंधों, आर्थिक योजना और सम्बद्ध विषयों का पर्याप्त ज्ञान होना आवश्यक है। योग्य और दक्ष न्याय निर्णायक होने के लिए विधि-सूत्रों का बहुत अच्छा ज्ञान होना आवश्यक नहीं है। संबंधित उद्योग में जिसमें विवाद उत्पन्न हुआ है, प्रौद्योगिकी विकास के आधार पर न्याय निर्णायक को उस प्रौद्योगिकी का ज्ञान प्राप्त करना पड़ सकता है या उसे ऐसे असेसरों की मदद लेनी पड़ सकती है जो उस विषय में पारंगत हों।

4.5. अतः यदि औद्योगिक न्यायनिर्णयन के लिए कोई ऐसा निकाय बनाया जा सके जिसमें विधिक मान और सूत्रों से अवगत व्यक्तियों के अतिरिक्त ऐसे भाग लेने वाले व्यक्ति भी हों जो आर्थिक योजना, औद्योगिक संबंधों, सामाजिक-आर्थिक न्याय के मान और सम्बद्ध विषयों में पारंगत हैं तो न केवल सहभागी न्याय का आदर्श प्राप्त होगा बल्कि ऐसे न्याय निर्णायकों के बीच पारस्परिक क्रिया से औद्योगिक विवादों को शीघ्रता से सुलझाने में मदद मिलेगी। अतः श्रम न्यायनिर्णयन एक ऐसा क्षेत्र है जिसमें परिनिश्चित अधिकारिता और शक्तियों सहित सहभागी न्याय प्रणाली प्रभावी रूप से लागू की जा सकती है।

4.6. इस दृष्टिकोण द्वारा प्राप्त किया जाने वाला दूसरा उद्देश्य उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों में काम की मात्रा को कम करने के लिए, न्यायिक अधिक्रम के भीतर एक ऐसा स्तर या ऐसी प्रणाली की व्यवस्था करना है जिसमें निश्चय ही न्यायिक कल्प अधिक्रम सम्मिलित होगा।

4.7. संविधान का अनुच्छेद 226 उच्च न्यायालय को, उन राज्यक्षेत्रों में सर्वत्र जिनके संबंध में वह अपनी अधिकारिता का प्रयोग करता है, भाग 3 द्वारा प्रदत्त अधिकारों में से किसी को प्रवर्तित कराने के लिए या किसी अन्य प्रयोजन के लिए उन राज्यक्षेत्रों के भीतर किसी व्यक्ति या प्राधिकारी को या समुचित मामलों में किसी सरकार को ऐसे निदेश, आदेश या रिट जिनके अंतर्गत बन्दी प्रत्यक्षीकरण, परमादेश, प्रतिषेध, अधिकार-पृच्छा और उत्प्रेषण रिटें हैं या उनमें से कोई जारी करने की शक्ति प्रदान करता है। अनुच्छेद 227 प्रत्येक उच्च न्यायालय को उन राज्यक्षेत्रों में सर्वत्र जिनके संबंध में वह अपनी अधिकारिता का प्रयोग करता है, सभी न्यायालयों और अधिकरणों का अधीक्षण करने की शक्ति प्रदान करता है। अनुच्छेद 227 का यह निर्वचन किया गया है कि वह उच्च न्यायालय को उस राज्य में जिसके लिए वह उच्च न्यायालय स्थापित किया गया है, काम कर रहे अधिकरणों के विनिश्चयों पर न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति प्रदान करता है। किसी मध्यवर्ती न्यायालय के अभाव में औद्योगिक अधिकरण के ऐसे लगभग सभी अधिनिर्णयों और श्रम न्यायालय के आदेशों के विरुद्ध जो किसी राज्य कानून के अधीन अपीलनीय नहीं है, सदैव उच्च न्यायालय में रिट अर्जियां दाखिल की जाती हैं जिससे उच्च न्यायालय के काम में बाधा पहुंचती है। उच्च न्यायालयवार लम्बित श्रम विधियों के अधीन मामलों की 31-12-85 को संख्या परिशिष्ट 5 में सारणीबद्ध हैं। न्याय मंत्रालय द्वारा दी गई जानकारी की तुलना में, लंबित मामलों की संख्या, परिशिष्ट 5 से लग्न विवरण के अनुसार, अधिक है।

4.8. संविधान का अनुच्छेद 32 उच्चतम न्यायालय को संविधान के भाग 3 द्वारा प्रदत्त अधिकारों में से किसी को प्रवर्तित कराने के लिए निदेश, आदेश या सभी रिटें जारी करने की अधिकारिता प्रदान करता है। अनुच्छेद 136 उच्चतम न्यायालय को भारत के राज्यक्षेत्र में किसी अधिकरण द्वारा पारित किए गए किसी निर्णय, डिक्री, अवधारणा, दण्डादेश या आदेश के विरुद्ध अपील करने के लिए विशेष इजाजत मंजूर करने की अधिकारिता प्रदान करता है। इस प्रकार, अधिकरण के सभी आदेश अपील करने के लिए विशेष इजाजत की अर्जी द्वारा सीधे उच्चतम न्यायालय में प्रश्नगत किए जा सकते हैं। इस रीति से अनेक मामले दाखिल किए जाते हैं (परिशिष्ट 3)।

4.9. जब उच्च न्यायालय मामले का विनिश्चय कर लेता है उसके बाद उच्च न्यायालय के विनिश्चय के विरुद्ध अपील करने के लिए विशेष इजाजत की अर्जी उच्चतम न्यायालय में अनुच्छेद 136 के अधीन दाखिल की जा सकती है। जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है, जहां यह कहा जाए कि विभिन्न उच्च न्यायालयों

के विनिश्चयों में विरोध अथवा दो उच्च न्यायालयों में एक ही विषय पर मतभेद हैं वहाँ अपील उच्चतम न्यायालय द्वारा, अधिकार के रूप में ग्रहण की जाती है। उच्च न्यायालयों के बीच श्रम मामलों से संबंधित दृष्टिकोण में परस्पर विरोध अनजानी बात नहीं है।

4.10. संविधान के भाग 14क में अनुच्छेद 323ख समुचित विधान-मण्डल को विधि द्वारा ऐसे विवादों, परिवादों या अपराधों के अधिकरणों द्वारा न्यायनिर्णयन या विचारण के लिए उपबंध करने की शक्ति प्रदान करता है जो खंड (2) में विनिर्दिष्ट सभी या किन्हीं विषयों से संबंधित हैं जिनके अंतर्गत अन्य बातों के साथ, औद्योगिक और श्रम विवाद भी हैं। समवर्ती सूची की प्रविष्टि 11क इस प्रकार है—"न्याय प्रशासन, उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों से भिन्न सभी न्यायालयों का गठन और संगठन"। समवर्ती सूची की प्रविष्टि 22 इस प्रकार है–"व्यापार संघ, औद्योगिक और श्रम विवाद"। समवर्ती सूची की प्रविष्टि 22 के साथ पठित प्रविष्टि 11क संसद् को औद्योगिक विवादों के न्यायनिर्णयन के लिए, आरंभिक और अपीली, दोनों, अधिकारिता वाले एक अधिकरण को, जिसकी बात अनुच्छेद 323ख (2) (ग) में सोची गई है, स्थापित करने के लिए विधि अधिनियमित करने के लिए समर्थ बनाएगी। यदि अखिल भारतीय स्तर पर अधिकारिता रखने वाला ऐसा अधिकरण स्थापित किया जाता है तो उससे एक अखिल भारतीय परिप्रेक्ष्य का विकास होगा। उसका विनिश्चय अनुच्छेद 136 के अधीन केवल उच्चतम न्यायालय के समक्ष प्रश्नगत किया जा सकता है। श्रम अपील अधिकरण स्थापित करते समय एक लोप के दुर्भाग्यपूर्ण अनुभव से बचने के लिए, इसमें परिकल्पित अधिकरण को स्थापित करने वाली विधि में उसी के साथ, अनुच्छेद 323ख (3) (घ) द्वारा अनुध्यात अधिकरण की अधिकारिता के भीतर आने वाले सभी या किसी मामले के संबंध में, अनुच्छेद 136 के अधीन उच्चतम न्यायालय की अधिकारिता को छोड़कर, सभी न्यायालयों की, जिनके अन्तर्गत उच्च न्यायालय भी हैं, अधिकारिता को अपवर्जित करने का उपबंध भी अवश्य होना चाहिए। इसमें परिकल्पित अधिकरण के स्थापित हो जाने पर वह एक ऐसे क्षेत्र में जहां उसकी बहुत अधिक आवश्यकता है, सहभागी न्याय के लिए एक न्यायालय के रूप में होगा और इसके साथ-साथ वह उस अखिल भारतीय परिप्रेक्ष्य को, जो अभी नहीं है, लाएगा तथा उच्च न्यायालय में और आनुपातिक रूप से उच्चतम न्यायालय में काम की मात्रा को निश्चय ही काफी कम करेगा। ऐसे न्यायालय की योजना तैयार करने में विधि आयोग का दृष्टिकोण इन्हीं उद्देश्यों से प्रभावित और प्रेरित हुआ है।

अध्याय 5

न्यायालय, उसका रूपविधान उसकी अधिकारिता और उसमें काम करने वाले कार्मिक

5.1. इसमें वर्णित किए जाने वाले नए मॉडल का एक व्यापक दृश्य पाने के लिए और उसकी कृत्यात्मक अनुकूलनीयता को समझने के लिए, औद्योगिक विवादों के निपटाने के लिए औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 द्वारा तैयार किए गए विद्यमान मॉडल के प्रति संक्षेपतः निर्देश करना लाभप्रद होगा।

5.2. औद्योगिक विवाद अधिनियम की धारा 7 में उस अधिनियम की द्वितीय अनुसूची में विनिर्दिष्ट किसी विषय से संबंधित औद्योगिक विवादों के न्यायनिर्णयन के लिए श्रम न्यायालयों की स्थापना पर विचार किया गया है। श्रम न्यायालय के पीठासीन अधिकारी के रूप में नियुक्त किए जाने के लिए किसी व्यक्ति के लिए किसी व्यक्ति के पात्र होने के लिए जो अर्हताएं विहित की गई हैं वे ऐसी हैं कि व्यक्तियों का चयन सिविल न्यायपालिका से ही करना आवश्यक हो जाएगा और इसी बात में सिविल न्याय प्रशासन में स्पष्ट दिखाई पड़ने वाली सभी तकनीकी बारीकियों, विलम्बकारिता और औपचारिक दृष्टिकोण के इसमें घुस आने की सम्भावना निहित है। श्रम न्यायालय का पीठासीन अधिकारी होने के लिए यह आवश्यक है कि वह व्यक्ति या तो किसी उच्च न्यायालय का पदासीन या सेवानिवृत्त न्यायाधीश हो या कम से कम तीन वर्ष की अवधि के लिए जिला न्यायाधीश या अपर जिला न्यायाधीश रहा हो अथवा उसने कम से कम सात वर्ष तक भारत में कोई न्यायिक पद धारण किया हो, जिससे अधीनस्थ न्यायपालिका के पदासीन या सेवानिवृत्त सदस्य अभिप्रेत हैं या राज्य कानूनों में से किसी के अधीन गठित किसी श्रम न्यायालय का कम से कम पांच वर्ष तक, पीठासीन अधिकारी रहा हो। यदि हम उन सभी राज्य कानूनों के प्रति निर्देश करें जिनमें श्रम न्यायालय के पीठासीन अधिकारी के रूप में नियुक्त किए जाने के लिए पात्रता की अर्हताएं विहित हैं तो यह केवल इस रिपोर्ट को और लम्बा बनाना होगा। तात्पर्य यह है कि ये अर्हताएं ऐसी हैं कि केवल राज्य की सिविल न्यायपालिका के सदस्य उन्हें अवांछनीय परिणामों के साथ, नियुक्त किए जाने के पात्र होंगे। श्रम न्यायालय की अधिकारिता की विषय वस्तु के लिए औद्योगिक विवाद अधिनियम की द्वितीय अनुसूची में वर्णित मुद्दों के प्रति निर्देश किया जा सकता है। कुल मिलाकर उनमें औद्योगिक स्थापनों में दिन प्रति दिन की काम की शर्तें अंतर्वलित हैं और वे उन निराशाजनक क्षेत्रों को उपदर्शित करते हैं जिनमें विवाद उत्पन्न हो सकते हैं।

5.3. धारा 7क समुचित सरकार को द्वितीय अनुसूची या तृतीय अनुसूची में विनिर्दिष्ट किसी विषय के सम्बन्ध में औद्योगिक विवादों के न्यायनिर्णयन के लिए एक या अधिक औद्योगिक अधिकरण गठित करने की शक्ति प्रदान करती है। उपधारा (3) में किसी अधिकरण का पीठासीन अधिकारी नियुक्त होने के लिए अर्हताएं विहित हैं। पात्र होने के लिए यह आवश्यक है कि वह व्यक्ति या तो किसी उच्च न्यायालय का पदासीन या सेवानिवृत्त न्यायाधीश हो या कम से कम तीन वर्ष की अवधि के लिए जिला न्यायाधीश या अपर जिला न्यायाधीश हो। इसमें इसके पूर्व जो आलोचना की गई है वह आवश्यक परिवर्तनों सहित वर्तमान स्थिति को भी लागू होगी जो श्रम न्यायालयों और औद्योगिक अधिकरणों के ऊपर सिविल न्याय प्रशासन का कार्य करने वाली न्यायपालिका की जकड़ को कायम रखती है।

5.4. औद्योगिक विवाद (अपील अधिकरण) अधिनियम, 1950 की धारा 5 में श्रम अपील अधिकरण के सदस्य के लिए अर्हताएं विहित की गई थीं। दृष्टिकोण वही था। अर्हताएं ये थीं कि "नियुक्त किए जाने के लिए पात्र होने के लिए सदस्य किसी उच्च न्यायालय का न्यायाधीश हो या रहा हो या उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के रूप में नियुक्ति के लिए अर्हित हो या कम से कम दो वर्ष के लिए किसी औद्योगिक अधिकरण का सदस्य रहा हो।" इसमें सिविल न्यायपालिका के सदस्य से भिन्न जिन व्यक्तियों के प्रवेश के लिए मार्ग खुला रखा गया था वे थे विधि व्यवसायी अधिवक्ता।

5.5. बहुत पहले 1973 में गुजरात सरकार ने श्रम विधियां पुनर्विलोकन समिति नामक एक समिति नियुक्त की थी जिसने अपना निम्नलिखित अभिमत प्रकट करते हुए इस परिस्थिति पर ध्यान दिया था :—

> "सिविल न्यायपालिका से लिए गए न्यायाधीश अपने साथ सिविल और आपराधिक न्याय के प्रशासन का आजीवन अनुभव लाते हैं। निस्संदेह वे ऐसे अधिकारी हैं जिनके पास एक न्यायाधीश

> का परिप्रेक्ष्य और उसकी वस्तुनिष्ठता होती है और उनके अनुभव ने उन्हें उनके समक्ष आने वाले प्रत्येक विवाद या समस्या को वस्तुनिष्ठ दृष्टिकोण से देखना सिखाया है। संभव है कि यह दृष्टिकोण श्रम और औद्योगिक न्यायालयों में सामाजिक-आर्थिक न्याय करते समय बहुत सहायक सिद्ध न हो। श्रम विधियों का मुख्य उद्देश्य राज्य को, जिसका एकमात्र उद्देश्य विधि और व्यवस्था बनाए रखना है, कल्याण राज्य का रूप देना है। कल्याण राज्य का आदर्श, जिसका आधार सामाजिक-आर्थिक न्याय है, प्राप्त करने के लिए औद्योगिक सम्बन्धों के नए मान तैयार करना होगा, उन्हें रूप देना होगा और उनका प्रवर्तन करना होगा। विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं में निर्धारित लक्ष्यों को ध्यान में रखना होगा। दूसरे शब्दों में, वर्तमान समय के सामाजिक दर्शन को पूरी तरह आत्मसात करना होगा और सामाजिक-आर्थिक न्याय के मान तैयार कर के उसे विधिक रूप देना होगा। अधिकारी को यह समझने का प्रशिक्षण और उसकी अभिरुचि होनी चाहिए कि दयनीय परिस्थितियों में जीवित रहने वाले व्यक्तियों का किस प्रकार उद्धार करके उन्हें, यदि पूर्णतया सभ्य जीवन, जो आदर्श होना चाहिए, नहीं तो कम से कम एक सहनीय जीवन प्रदान करना है———— वे न्यायाधीश जिन्होंने अपना सारा सक्रिय जीवन सिविल न्यायपालिका में काम करके बिताया है, निस्संदेह कुछ विशिष्ट अपवादों के साथ, स्थिति का सामना करने और अपेक्षाओं को पूरा करने में असमर्थ हो सकते हैं। पिछले पच्चीस वर्षों में श्रम न्यायिक सेवा का सृजन करने का कोई भी प्रयास नहीं किया गया है।"[22]

5.6. इस समिति ने सबसे पहली सिफारिश यह की थी कि सेवानिवृत्त न्यायाधीश अथवा वे लोग जो सिविल न्यायपालिका से सेवानिवृत्त होने वाले हैं, औद्योगिक और श्रम न्यायालयों और औद्योगिक अधिकरणों में नियुक्त नहीं किए जाने चाहिएं।

5.7. श्रम अपील अधिकरण को समाप्त करने की जोरदार मांग के समर्थन में एक आधार यह था कि अधिकरण में नियुक्त न्यायाधीश अधिकांशतः उच्च न्यायालय के सेवानिवृत्त न्यायाधीशों के काडर से लिए गए हैं और इसलिए वे अपनी आदत, अपने स्वभाव और परम्परा से तकनीकी, औपचारिक और सामाजिक-आर्थिक न्याय की मांगों के प्रति उदासीन हो सकते हैं। यदि यह मान भी लें कि श्रम अपील अधिकरण को समाप्त करने की मांग अधिकरण द्वारा अपीलों के निपटारे में थोड़े विलम्ब से क्षुब्ध कुछ व्यक्तियों की अपरिपक्व प्रतिक्रिया थी तो भी यह तथ्य है कि जिन व्यक्तियों ने सिविल न्याय करने वाले न्यायालयों में अपना पूरा सक्रिय जीवन बिताया है, उनमें जब वे औद्योगिक विवादों के निराकरण के लिए स्थापित अधिकरणों के सदस्यों के रूप में कार्य करते हैं तब पूर्व-निर्णय अभिमुख, तकनीकी, पारंपरिक और उनके समक्ष उपस्थित होने वाले पक्षकारों की नितांत असमानताओं के प्रति, यदि आंखें मूंद लेने की नहीं तो उनसे अप्रभावित रहने की प्रवृत्ति होती है। यदि न्यायाधीशों के रूप में अपनी जीवन यात्रा में वे यदि यह पता लगाने के आदी थे कि संविदा क्या है और सत्य निष्ठा से यह विश्वास करते थे कि पक्षकारों को उनकी अपनी संविदाओं से बाध्य होना चाहिए, तो उनसे यह आशा करना बहुत बड़ी बात होगी कि वे यह कहें कि जब वे औद्योगिक न्यायनिर्णयन का कार्य करेंगे तब संविदाओं की अनुचित बातों पर ध्यान देंगे और यह सोचेंगे कि संविदा क्या होनी चाहिए अर्थात् नियोजक और कर्मकारों के बीच क्या उचित सम्बन्ध होना चाहिए। राज्य स्तर और राष्ट्रीय स्तर दोनों ही स्तरों पर, और औद्योगिक विवादों को निपटाने के लिए न्यायालय की बात सोचते समय हमें इस ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य को ध्यान में रखना होगा।

5.8. सारांश यह है कि पूर्वगामी विचार विमर्श और 1947 से आज तक के ऐतिहासिक पुनर्विलोकन से तीन पहलू उभर कर सामने आए हैं। संविधान के भाग-4 के परिप्रेक्ष्य के भीतर एक सुसंगत दृष्टव्य औद्योगिक विधिशास्त्र की रचना करने के लिए श्रम न्यायालयों/औद्योगिक अधिकरणों के परस्पर विरोधी अधिनिर्णयों में तालमेल बढ़ाने की अधिकारिता रखने वाले एक अखिल भारतीय निकाय के अभाव में, औद्योगिक सम्बन्ध के परस्पर विरोधी और अनमेल मान उभरे हैं। दूसरी बात यह है कि यह प्रत्याशा कि भारत का उच्चतम न्यायालय शीघ्र एकरूपता प्रदान करके इस कमी को दूर कर देगा, पूर्णतया झूठी सिद्ध हुई है। तीसरी बात यह है कि औद्योगिक न्यायनिर्णयन मानवीय तत्व से रहित मात्र विधिक ढांचे में क्रियाशील नहीं रह सकता है। उसके लिए संवैधानिक लक्ष्यों, मानविकी, सामाजिक विज्ञानों, आर्थिक योजना तथा राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक विकासों की समझ अपेक्षित है। संक्षेप में, यह विशेषज्ञता पूर्ण अध्ययन का क्षेत्र है और इसलिए यह विशेषज्ञ न्यायालय का सरोकार होना चाहिए। अन्त में, औद्योगिक न्यायनिर्णयन को शासित करने वाला मूल विचार औद्योगिक शान्ति और मेल-मिलाप है जिससे राष्ट्र की

आर्थिक उन्नति के लिए लाभप्रद पर्यावरण सृजित हो, अतः न्यायनिर्णायक के पास उस दिशा में आगे बढ़ने की दृष्टि और क्षमता होनी आवश्यक है। समय के साथ-साथ औद्योगिक न्यायनिर्णयन में सिविल मुकदमेबाजी की सभी विशेषताएं विकसित हो गई हैं जिनके कारण उसकी सभी त्रुटियां, परिसीमाएं और अलाभ उसमें आ गए हैं। इसका विकल्प ढूंढने के लिए एक साहसी और नया दृष्टिकोण अपनाना होगा। इस समस्या का हल सहभागी न्याय प्रणाली की व्यवस्था करना है। औद्योगिक न्यायनिर्णयन एक ऐसा क्षेत्र है जिसमें परिनिश्चित अधिकारिता और शक्तियों सहित सहभागी न्याय प्रणाली लाभप्रद रूप से लागू की जा सकती है जिससे वे बुराइयां दूर हो जाएंगी जो अभी तक देखी गई हैं और जिनका वर्णन ऊपर किया जा चुका है।

5.9. आधारिक स्तर पर, औद्योगिक विवाद अधिनियम की धारा 7 द्वारा अनुध्यात श्रम न्यायालय कार्य कर रहा है। साधारणतया यह एक सदस्यीय अधिकरण है। जिसके सदस्य अधिकांशतः सिविल न्यायपालिका से लिए जाते हैं। इस स्तर पर, ग्राम न्यायालय पर रिपोर्ट में अपने अनुभवों से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि सहभागी माडल आरम्भ करना आवश्यक है। श्रम न्यायालय के न्यायाधीश की सहायता दो विशेषज्ञ न्यायाधीशों द्वारा की जानी चाहिए जो कर्मकारों और नियोजकों की पंक्ति से लिए जाएं। आज श्रम न्यायालय में सिविल न्याय करने वाले न्यायालय की सभी विशेषताएं पाई जाती हैं। श्रम न्यायालय के वर्तमान माडल को, जो औपचारिक और कानूनी है, एक अनौपचारिक और सहभागी माडल में बदल दिया जाना वांछनीय है। श्रम न्यायालय की अधिकारिता के अन्तर्गत औद्योगिक विवाद अधिनियम की द्वितीय अनुसूची में वर्णित सभी मदें आती हैं। उस द्वितीय अनुसूची के प्रति निर्देश करने से सरसरी तौर पर दर्शित होगा कि उसमें वर्णित विषयों के बारे में बेहतर कार्यवाही श्रम न्यायालय को गठित करने वाले सभी तीनों सदस्यों की पारस्परिक क्रिया द्वारा होती है। श्रम न्यायालय स्थायी आदेशों के अधीन किसी नियोजक द्वारा पारित आदेश के औचित्य और उसकी वैधता की समीक्षा कर सकता है। वह स्थायी आदेशों के निहितार्थों और निर्वचनों की समीक्षा कर सकता है। वे मामले जिनके अन्तर्गत ये मदें आती हैं, आमतौर पर सरल स्वरूप के होते हैं। द्वितीय अनुसूची में मद सं० 3 "कर्मकारों की सेवोन्मोचन या पदच्युति जिसके अन्तर्गत गलत तौर पर पदच्युत किए गए कर्मकारों का यथापूर्वकरण या उनको अनुतोष की मंजूरी" के विषय में है। इस क्षेत्र में अधिकांश मुकदमे कर्मकारों के सेवोन्मोचन या उनकी पदच्युति और यथापूर्वकरण के लिए दावे से या अन्य आनुषंगिक अनुतोष, जैसे कि छंटनी के लिए प्रतिकर, जहां यथापूर्वकरण का आदेश दिया जाता है वहां पिछली मजदूरी, आनुषंगिक अनुतोष, यदि यथापूर्वकरण का आदेश लम्बे समय के बाद दिया जाता है, से उत्पन्न होते हैं। यहीं पर कर्मकार वर्ग से आने वाले अविशेषज्ञ न्यायाधीश की नियोजक वर्ग से आने वाले ऐसे न्यायाधीश तथा एक तीसरे न्यायाधीश के, जिसके पास विधि के क्षेत्र में प्रशिक्षित मस्तिष्क है, साथ अन्तरक्रिया से ऐसा परिणाम सामने आएगा जो न्यूनाधिक बहुत संतोषप्रद होगा। मद सं० 4 में किसी रूढ़िजन्य रियायत या विशेषाधिकार के प्रत्याहरण (वापिस लिए जाने) का उपबन्ध है। जो लोग व्यवसाय संघ के नेताओं के रूप में या नियोजकों के संगम में काम करते हैं वे इस बात से सुपरिचित होंगे कि रूढ़िजन्य रियायतें और विशेषाधिकार क्या हैं? मद 5, हड़ताल या तालाबन्दी की अवैधता या अन्यथा के संबंध में है। यह बिल्कुल स्पष्ट प्रतीत होता है कि द्वितीय अनुसूची में वर्णित विषय ऐसे हैं जिनके संबंध में, सहभागी माडल द्वारा बेहतर कार्यवाही की जा सकती है।

5.10. औद्योगिक अधिकरणों की स्थापना समुचित सरकार द्वारा औद्योगिक विवाद अधिनियम की धारा 7क द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग, करते हुए, की जाती है। केन्द्रीय सरकार धारा 7ख द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए, ऐसे औद्योगिक विवादों के न्यायनिर्णयन के लिए एक राष्ट्रीय औद्योगिक अधिकरण स्थापित कर सकती है जिनमें केन्द्रीय सरकार की राय में राष्ट्रीय महत्व के प्रश्न जुड़े होते हैं या जिनका स्वरूप ऐसा है कि एक से अधिक राज्यों में स्थित औद्योगिक स्थापनों के ऐसे विवादों में हितबद्ध होने या उनसे प्रभावित होने की संभावना है। धारा 7ख की उपधारा (2) में उपबन्ध है कि राष्ट्रीय औद्योगिक अधिकरण में केवल एक व्यक्ति होगा जो केन्द्रीय सरकार द्वारा नियुक्त किया जाएगा। कुल मिलाकर इस एक सदस्यीय राष्ट्रीय अधिकरण की अध्यक्षता उच्च न्यायालय या उच्चतम न्यायालय के किसी सेवानिवृत्त न्यायाधीश द्वारा की जाती है। यह माडल 1956 से परखा गया है। राष्ट्रीय अधिकरणों के अधिकांश अधिनिर्णयों को उच्च न्यायालयों और उच्चतम न्यायालय में प्रश्नगत किया गया है। इस सम्बन्ध में एक नए सोच और वर्तमान व्यवस्था से हटने की आवश्यकता है। राष्ट्रीय और राज्य दोनों ही स्तरों पर क्रमशः राष्ट्रीय औद्योगिक अधिकरण और औद्योगिक अधिकरण को बदल देना निश्चय ही

एक अग्रगामी अभिमुख कदम होगा। यह बिल्कुल स्पष्ट कर देना उचित होगा कि इस बारे में हम अछूते विषय के सम्बन्ध में नहीं लिख रहे हैं। श्रम पर राष्ट्रीय आयोग ने राज्य और केन्द्रीय, दोनों, स्तर पर औद्योगिक सम्बन्ध आयोग के आरम्भ किए जाने के औचित्य, वांछनीयता और व्यवहार्यता की समीक्षा की है।[23] सनत मेहता समिति[24] ने 1982 में राष्ट्रीय श्रम आयोग की सिफारिश का समर्थन किया था। स्थायी श्रम समिति की पश्चात्वर्ती बैठक ने सनत मेहता समिति की सिफारिश को स्वीकार किया था। हम केवल उन्हीं कारणों से नहीं जो उन सम्मान्य निकायों को ठीक लगे थे बल्कि इस अतिरिक्त कारण से भी कि सहभागी न्याय का माडल औद्योगिक न्यायनिर्णयन के क्षेत्र में, सुविधापूर्वक लागू किया जा सकता है; इस सिफारिश से प्रभावित हुए हैं। इससे न्याय प्रशासन के, जो इस समय बहुत भारी भरकम है, विकेन्द्रीकरण में प्रभावी रूप से मदद मिलेगी।

5.11. इसमें परिकल्पित औद्योगिक सम्बन्ध आयोग "औद्योगिक विवादों के न्यायनिर्णयन के लिए अधिकरण" व्यापक पद के अधीन आ सकता है और ये सिफारिशें संविधान के अनुच्छेद 323ख द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करके इस प्रयोजन के लिए पारित विधि द्वारा प्रभावकारी रूप से कियान्वित की जा सकती हैं।

5.12. इस बात पर पुनः बल देने की आवश्यकता है कि केन्द्रीय और राज्य, दोनों स्तर पर औद्योगिक सम्बन्ध आयोग सहभागी न्याय का एक आदर्श प्रस्तुत करेगा।

5.13. अतिरिक्त लाभ यह होगा कि उच्च न्यायालय और उच्चतम न्यायालय के कार्यभार में पारिणामिक कमी होगी क्योंकि औद्योगिक सम्बन्ध आयोग की अधिकारिता के भीतर आने वाले विषयों के बारे में कार्यवाही करने की उच्च न्यायालय की अधिकारिता अपवर्जित की जानी चाहिए।

5.14. केन्द्रीय और राज्य स्तर पर औद्योगिक सम्बन्ध आयोग में एक अध्यक्ष होगा जो केन्द्रीय आयोग के लिए उच्चतम न्यायालय के एक सेवानिवृत्त न्यायाधीश और राज्य आयोग के लिए उच्च न्यायालय के एक सेवानिवृत्त न्यायाधीश की पंक्ति से लिया जाएगा। यूनियन नेताओं की पंक्ति और कर्मचारी संगठन से समान संख्या में वे सदस्य लिए जाएंगे जिनसे मिलकर आयोग गठित होगा। यह बात विनिर्दिष्ट रूप से स्पष्ट कर देनी आवश्यक है कि इन सदस्यों के लिए विधि विषय की उपाधि अथवा विधि के क्षेत्र में प्रशिक्षण की पृष्ठभूमि का आवश्यक अर्हता के रूप में होना आवश्यक नहीं है। किन्तु यह आवश्यक है कि उन्हें औद्योगिक सम्बन्धी, उद्योगों के प्रबन्ध, आर्थिक योजना तथा भारत सरकार की औद्योगिक, वित्तीय, धनीय नीतियों का पर्याप्त ज्ञान हो।

5.15. राज्य में और केन्द्र में औद्योगिक सम्बन्ध आयोग को आरम्भिक और अपीली, दोनों अधिकारिता प्राप्त होगी। श्रम न्यायालय के विनिश्चय के विरुद्ध अपील राज्य औद्योगिक सम्बन्ध आयोग में विशुद्ध रूप से विधि के महत्वपूर्ण प्रश्न पर की जा सकेगी। अपील की सुनवाई तीन न्यायाधीशों की एक बेंच द्वारा की जाएगी। इनमें एक, न्यायिक सदस्य और बाकी दो गैर-न्यायिक सदस्य होने चाहिएं। इस समय औद्योगिक अधिकरणों की अधिकारिता के भीतर आने वाले सभी औद्योगिक विवाद राज्य औद्योगिक सम्बन्ध आयोग की अधिकारिता के भीतर आएंगे और उसे निर्देश, औद्योगिक विवाद अधिनियम की धारा 10 के अधीन समुचित सरकार के रूप में राज्य सरकार द्वारा किया जाना चाहिए। ऐसे सभी मामले जो राष्ट्रीय औद्योगिक अधिकरण को निर्देशित किए जा सकते थे, केन्द्र में औद्योगिक सम्बन्ध आयोग की अधिकारिता के भीतर आएंगे। उनकी सुनवाई उतने व्यक्तियों द्वारा की जाएगी जितने आयोग के अध्यक्ष द्वारा तय किए जाएं। केन्द्रस्थ औद्योगिक सम्बन्ध आयोग को राज्य स्तर पर औद्योगिक सम्बन्ध आयोग के अधिनिर्णयों और विनिश्चयों पर अपीली अधिकारिता भी होगी। किन्तु अपील केवल विधि के महत्वपूर्ण प्रश्न तक सीमित होगी जो अपील के ग्रहण किए जाने के समय विनिर्दिष्ट रूप से बताए जाने चाहिएं।

5.16. केन्द्र और राज्य, दोनों, स्तर पर औद्योगिक सम्बन्ध आयोग के सदस्य क्रमशः केन्द्रीय और राज्य सरकारों द्वारा, विधि आयोग की 121वीं रिपोर्ट में की गई सिफारिश के अनुसार स्थापित किए जाने वाले राष्ट्रीय न्यायिक सेवा आयोग से परामर्श करके नियुक्त किए जाएंगे। ऐसे आयोग की स्थापना करने वाले अधिनियम में औद्योगिक सम्बन्ध आयोग को सुलह कराने की शक्ति प्रदान करने पर भी सोचा जा सकता है।

5.17. केन्द्रीय और राज्य स्तर पर और औद्योगिक सम्बन्ध आयोग के अध्यक्ष और सदस्यों की सेवा की शर्तें केन्द्रीय सरकार द्वारा राष्ट्रीय न्यायिक सेवा आयोग के परामर्श से अवधारित की जाएंगी।

5.18. आयोग में नियुक्त किए जाने वाले सदस्यों के प्रभावकारी प्रशिक्षण की व्यवस्था सरकार द्वारा, विधि आयोग द्वारा उसकी 117वीं रिपोर्ट में सिफारिश किए गए प्रशिक्षण के अनुसार की जाएगी।

5.19. औद्योगिक सम्बन्ध आयोग स्थापित करने वाली विधि में अन्य बातों के साथ, ऐसे मामलों के सम्बन्ध में कार्य करने से जो राज्य और केन्द्रीय स्तर पर औद्योगिक सम्बन्ध आयोग की अधिकारिता के भीतर आते हैं उच्च न्यायालय की अधिकारिता के अपवर्जन के लिए उपबन्ध किया जाएगा। श्रम न्यायालय, उच्च न्यायालय के अधीक्षण से बाहर होगा और उसे राज्य औद्योगिक सम्बन्ध आयोग के अधीक्षण के भीतर लाया जाएगा।

5.20. किसी विशिष्ट मामले के विषय में कार्य करने वाले, आयोग को गठित करने वाले सदस्यों के बीच विवाद की दशा में, बहुमत का विनिश्चय अभिभावी होगा। राज्य स्तरीय आयोगों में विरोध होने की दशा में, वह मामला केन्द्रीय औद्योगिक सम्बन्ध आयोग द्वारा स्वयं विनिश्चय करने के लिए प्रत्याहृत किया जा सकता है। केन्द्रीय औद्योगिक सम्बन्ध आयोग का विनिश्चय सभी राज्य औद्योगिक सम्बन्ध आयोगों पर और श्रम न्यायालयों पर आबद्धकर होगा।

5.21. अनुच्छेद 136 के अधीन उच्चतम न्यायालय की केन्द्र में औद्योगिक सम्बन्ध आयोग के विनिश्चयों पर अधिकारिता ज्यों की त्यों बनी रहेगी।

5.22. आज औद्योगिक श्रम के विषय में संसद् द्वारा पारित लगभग 51 कानून हैं (परिशिष्ट 2)। कुछ कानूनों में, कानूनों के अधीन उत्पन्न होने वाले विवादों को निपटाने के लिए अपने ही आरम्भिक और अपीली तन्त्र के स्थापना का उपबन्ध है। इन कानूनों के अधीन कार्यरत विभिन्न प्राधिकारियों को सारणी बद्ध करने का प्रयास किया गया है। परिशिष्ट 6 में दी गई सारणी में वह अपीली निकाय भी दर्शित है, जिसमें आरम्भिक अधिकारिता रखने वाले प्राधिकारी के विनिश्चय के विरुद्ध अपील प्रस्तुत की जा सकती है। उदाहरण के लिए, उपदान संदाय अधिनियम, 1972 के अधीन विवाद, नियन्त्रक प्राधिकारी के समक्ष मूलतः लाया जा सकता है और अपील समुचित सरकार को की जाएगी। यह न्यायिक कल्प न्याय-निर्णयन है। पक्षपात और शासन द्वारा न्यायिक कल्प कृत्य अपने हाथ में लिए जाने के आरोप से बचने के लिए प्रत्येक कानून के अधीन अपीली अधिकारिता राज्य स्तर पर औद्योगिक सम्बन्ध आयोग को प्रदान की जानी चाहिए। परिशिष्ट 6 में दी गई सारणी में वे प्राधिकारी भी वर्णित हैं जो इन कानूनों के अधीन अपराधों का प्रसंज्ञान करने के लिए सक्षम हैं। सरल करने और विशेषज्ञतापूर्ण बनाने के लिए यह आवश्यक है कि इन कानूनों के अधीन अपराधों का विचारण करने की अधिकारिता श्रम न्यायालयों को प्रदान की जाए। इसी प्रकार अपील प्राधिकारी, राज्य औद्योगिक सम्बन्ध आयोग को बनाया जाना चाहिए। इससे विशेषज्ञ अधिकारिता वाले न्यायालयों द्वारा सभी श्रम विधियों के लिए कार्य किए जाने की व्यवस्था होगी। यह विधियों, प्रक्रिया की और न्यायालय को तर्कसंगत बनाने की ओर एक कदम होगा। जब यह सिफारिश की जाती है कि राज्य और केन्द्र के स्तर पर औद्योगिक सम्बन्ध आयोग स्थापित करने के लिए विधि अधिनियमित करनी होगी तब उसी अवसर का लाभ, श्रम विधियों के अधीन अपराधों का संज्ञान करने के लिए न्यायालय के बारे में इसमें जो कहा गया है उसके लिए और उन सभी विधियों के अधीन एक राज्य अपील न्यायालय के लिए भी उपबन्ध करने के लिए उठाया जाना चाहिए।

हम तदनुसार सिफारिश करते हैं।

हस्ता०——————
(डी० ए० देसाई)
अध्यक्ष

हस्ता०——————
(बी० एस० रमा देवी)
सदस्य-सचिव

नई दिल्ली,
9 दिसम्बर, 1987

निर्देश

1. भारत का विधि आयोग, **कर न्यायालयों पर 115वीं रिपोर्ट**।
2. जेम्स क्राफोर्ड, **आस्ट्रेलियन कोर्टस आफ ला**, पृ० 260।
3. एलेन आर० जार्डन : शुड लिटीगेन्ट्स हैव ए चवाइस बिटविन स्पेशलाइज्ड कोर्ट्स एंड कोर्टस आफ जनरल ज्युरिसडिक्कशन ? 66 ज्यूडिकेचर, 14–27 (1980)।
4. पूर्वोक्त।
5. 1982, जेम्स क्राफोर्ड : **आस्ट्रेलियन कोर्ट्स आफ ला**, पृ० 251–253।
6. एच० टेड रूबिन, **द कोर्ट्स**, पृ० 208।
7. प्रथम पंचवर्षीय योजना दस्तावेज, पृ० 572।
8. **श्रम पर राष्ट्रीय आयोग की रिपोर्ट**, पृ० 56, पैरा 6.48।
9. एच०बी०हिगिन्स: **ए न्यू प्राविन्स फार ला एण्ड आर्डर**।
10. **श्रम विधियां पुनर्विलोकन समिति**: गुजरात राज्य, 1974, की रिपोर्ट में उद्धृत, पृ० 6 पैरा 2.8।
11. **जीवन बीमा निगम** बनाम **डी०जे० बहादुर** (1981), 1 एस सी सी 315 पृ० 334-335।
12. **बंगलौर वाटर सप्लाई एण्ड सीवरेज बोर्ड** बनाम **राजप्पा**, (1978) 2 एस सी सी 213 पृ० 232।
13. **दयाभाई रणछोड़दास शाह** बनाम **जयन्ती लाल मगनलाल**, 1973 लेब० एण्ड आई सी० 967।
14. बी०एस० नरूला, **द अबोलिशन आफ लेबर अपीलेट ट्रिब्यूनल**, पृ० 272–279।
15. राजीव धवन : **लिटीगेशन एक्सप्लोजन**।
16. अन्तरराष्ट्रीय श्रम सगठन संकल्प सं० 119–जून, 1963 का।
17. भारत का विधि आयोग चौदहवीं रिपोर्ट, पृ० 283।
18. अमरीका के सुप्रीम कोर्ट के चीफ जस्टिस बर्गर–अपने विख्यात भाषण "आर्बिट्रेशन, नाट लिटीगेशन" में।
19. भारत का विधि आयोग, **चौदहवीं रिपोर्ट** (1958), **जिल्द 1, पृष्ठ 50-51**।
20. **राष्ट्रीय श्रम आयोग**, अध्याय 23, पैरा 23.61 से 23.65 तक।
21. भारत का विधि आयोग, **114वीं रिपोर्ट**, अध्याय 3।
22. (1974) श्रम विधि पुनर्विलोकन समिति की रिपोर्ट, पृ० 20, पैरा 4.4।
23. श्रम पर राष्ट्रयीय आयोग की रिपोर्ट, पृ० 332-335, पैरा 23.61 से 23.65 तक।
24. सनत मेहता समिति रिपोर्ट, पैरा 2.1.2।

परिशिष्ट 1

(पैरा 1.8)

भारत का विधि आयोग

श्रम न्याय निर्णयन में राष्ट्रीय एकरूपता के लिए न्यायालय

पर

कार्य पत्र

(प्रश्नावली)

प्रश्नावली

प्रस्तावना

भारत सरकार ने न्यायिक सुधारों का अध्ययन, उसकी समीक्षा और सिफारिश करने के लिए एक आयोग स्थापित करने का संकल्प पारित किया था । सौंपे गए काम में से एक इस प्रकार था :—

"(iii) उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों में काम की मात्रा को कम करने के लिए न्यायिक अधिक्रम के भीतर अन्य पंक्तियां या प्रणालियां स्थापित करके न्याय प्रशासन प्रणाली के विकेंद्रीकरण की आवश्यकता ।"

इस पहलू की समीक्षा करते समय यह बताया गया था कि अधिकरणों की स्थापना को अनुज्ञात करने वाले, संविधान के भाग 14क के उपबंध को ध्यान में रखा जाए । अंतिम लक्ष्य संविधान के अनुच्छेद 39क के आधारभूत उद्देश्य को वास्तविकता प्रदान करना था । अनुच्छेद 39क में उपबंध है कि "राज्य यह सुनिश्चित करेगा कि विधिक व्यवस्था इस प्रकार काम करे कि न्याय समान अवसर के आधार पर सुलभ हो और वह, विशिष्टतया, यह सुनिश्चित करने के लिए कि आर्थिक या किसी अन्य निर्योग्यता के कारण कोई नागरिक न्याय प्राप्त करने के अवसर से वंचित न रह जाए, उपयुक्त विधान या स्कीम द्वारा या किसी अन्य रीति से निःशुल्क विधिक सहायता की व्यवस्था करेगा" ।

2. अन्ततोगत्वा, भारत सरकार ने न्यायिक सुधारों का अध्ययन और उनकी सिफारिश करने का यह काम वर्तमान विधि आयोग को सौंपा । तदनुसार, विधि आयोग ने न्याय प्रदान करने की प्रणाली के सभी अंगों की पुनर्संरचना का एक व्यापक कार्यक्रम तैयार किया । विधि आयोग अब तक ग्रामीण क्षेत्रों से उत्पन्न होने वाले मुकदमों, राज्यों में अधीनस्थ न्यायपालिका की संरचना और उसे मजबूत बनाने, संविधान के अनुच्छेद 312 में अनुध्यात एक अखिल भारतीय न्यायिक सेवा स्थापित करने, सभी स्तरों पर न्यायपालिका के सदस्यों को प्रशिक्षण देने तथा प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष, दोनों, करों के लिए और वस्तुओं के आयात और निर्यात के क्षेत्र में विवादों को निपटाने के लिए भी केन्द्रीय कर न्यायालय स्थापित करने पर विचार कर चुका है । न्यायिक प्रणाली की पुनर्संरचना के पीछे जो दो उद्देश्य हैं, वे हैं न्याय प्रदान प्रणाली को लचीला, प्रभावकारी, समयबद्ध कम खर्चीली और व्यावसायिकता सहित बनाना है जिससे कि बकाया मामलों की संख्या घट जाए और पुराने मामलों को निपटा दिया जाए । दूसरा उद्देश्य न्याय तक पहुंच को आसान, कम खर्चीली और गैर-तकनीकी बनाना है ।

3. विगत काल में भी यह अनुभव किया गया था कि औपनिवेशिक काल से इस देश में कार्य कर रहे सिविल और दंड न्यायालय श्रम/औद्योगिक विवादों से, जिनमें दृष्टिकोण वितरणीय न्याय का विस्तार करना है, निपटने के लिए अक्षम होंगे । इस विचार का एक आवश्यक अंग यह विश्वास था कि हमारे जैसा कोई विकासशील देश वाणिज्य और उद्योगों में टकराव की विलासिता को सहन नहीं कर सकता है, जिसका उत्पादन पर प्रभाव पड़ता है और जिससे विकास में बाधा पड़ती है और इसलिए ऐसे देश के लिए आवश्यक है कि उसके पास श्रम/औद्योगिक विवादों के निपटारे के लिए प्रभावकारी तंत्र हों । हड़तालों और टकराव के विकल्प के रूप में अनिवार्य न्यायनिर्णयन की योजना तैयार की गई थी । इससे पूर्व के छुटपुट प्रयासों जैसे कि नियोजक और कर्मकार (विवाद) अधिनियम, 1860, भारतीय व्यापार विवाद अधिनियम, 1929, बम्बई औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1937 की अवहेलना करते हुए पहला बड़ा कदम औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 पारित करके उठाया गया था। 1947 के अधिनियम के उपबंधों का आशय कर्मकारों को कोई विनिर्दिष्ट प्रसुविधा प्रदान करना नहीं था बल्कि उस अधिनियम में सरकार को पक्षकारों को टकराव से बचने और न्यायनिर्णयन का आश्रय लेने के लिए विवश करने की शक्ति प्रदान की गई थी । मोटे तौर पर कहा जाए तो वह औद्योगिक माध्यस्थम् के लिए अधिनियम था । इस अधिनियम में बाद में किए गए कुछ संशोधनों से कर्मकारों को कुछ विनिर्दिष्ट प्रसुविधाएं प्राप्त हुई थीं और नियोजकों पर कुछ दायित्व अधिरोपित किए गए थे । वर्तमान प्रयोजन के लिए, यह भाग कदापि सुसंगत नहीं है ।

4. यहां पर यह उल्लेखनीय है कि अनेक राज्यों ने पक्षकारों को औद्योगिक न्यायनिर्णयन का आश्रय लेने के लिए विवश करने और हड़तालों पर रोक लगाने के लिए शक्ति प्राप्त करने के उद्देश्य से विधान

अधिनियमित किए हैं। उनमें से कुछ, जैसे कि बम्बई औद्योगिक संबंध अधिनियम, का काफी व्यापक स्वरूप के हैं। कुछ अन्य, जैसे कि उत्तर प्रदेश औद्योगिक विवाद अधिनियम, ने न्यूनाधिक केन्द्रीय अधिनियम को नमूने के रूप में अपनाया है। इस प्रश्नावली का उद्देश्य बहुत सीमित है अर्थात् एक ओर तो श्रम न्यायालयों/औद्योगिक अधिकरणों और दूसरी ओर उच्च न्यायालय/उच्चतम न्यायालय के बीच के एक न्यायालय की व्यवस्था करना जिससे कि उच्च न्यायालयों की अधिकारिता हट जाए तथा एक अखिल भारतीय अधिकारिता वाले एक अधिकरण का बीच में रखना। यह जांच सौंपे गए काम के, जो पैरा 1 में उद्धृत है, संबंध में है।

5. औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 औद्योगिक विवादों के अन्वेषण और निपटारे के लिए उपबंध करने हेतु अधिनियमित किया गया था। उसमें द्वितीय अनुसूची में विनिर्दिष्ट किसी विषय के संबंध में औद्योगिक विवादों के न्यायनिर्णयन के लिए एक श्रम न्यायालय की, द्वितीय या तृतीय अनुसूची में विनिर्दिष्ट किसी विवाद के संबंध में औद्योगिक विवादों के न्यायनिर्णयन के लिए और ऐसे अन्य कृत्य करने के लिए जो उसके अधीन उन्हें सौंपे जाएं औद्योगिक अधिकरण (धारा 7क) ऐसे औद्योगिक विवादों के न्यायनिर्णयन के लिए राष्ट्रीय अधिकरण की जिनमें केन्द्रीय सरकार की राय में राष्ट्रीय महत्व के प्रश्न अन्तर्वलित हैं या जो ऐसे स्वरूप के हैं कि एक से अधिक राज्यों में स्थित औद्योगिक स्थापनों के ऐसे विवादों में हितबद्ध होने या उनके द्वारा प्रभावित होने की संभावना है (धारा 7), स्थापना की परिकल्पना की गई है। उसमें ऐसे किसी मामले में जो किसी औद्योगिक विवाद से संबंधित या उससे सुसंगत प्रकट होता है, जांच करने के लिए जांच न्यायालयों के स्थापित किए जाने की भी परिकल्पना की गई है (धारा 6)। इसके अतिरिक्त उस स्थापन में नियोजित व्यष्टिक कर्मकार से संबंधित औद्योगिक विवादों के निपटारे के लिए एक शिकायत निपटारा प्राधिकारी की भी स्थापना की परिकल्पना की गई है (धारा 9ग)।

6. धारा 10 अधिनियम में यथापरिभाषित समुचित सरकार को कोई ऐसा औद्योगिक विवाद उसके न्यायनिर्णयन के लिए, यथास्थिति, बोर्ड, जांच न्यायालय, श्रम न्यायालय या किसी औद्योगिक अधिकरण को निर्देशित करने की शक्ति प्रदान करती है जो या तो विद्यमान है या जिसकी आशंका है। धारा 10(1क) उसमें विनिर्दिष्ट स्वरूप के औद्योगिक विवाद या विवाद से संबंधित या उससे सुसंगत प्रकट होने वाला कोई मामला न्यायनिर्णयन के लिए राष्ट्रीय अधिकरण को निर्देशित करने की शक्ति प्रदान करती है। धारा 10 की उपधारा (2) समुचित सरकार को किसी औद्योगिक विवाद को, यथास्थिति, किसी बोर्ड, न्यायालय, श्रम न्यायालय, अधिकरण या राष्ट्रीय अधिकरण को उस स्थिति में निर्देशित करने के लिए बाध्य करती है जहां ऐसे औद्योगिक विवाद के पक्षकार विहित रीति में आवेदन करते हैं। जिस निकाय को निर्देश किया जाता है वह विवाद का न्यायनिर्णयन करेगा और अधिनिर्णय देगा। अधिनिर्णय समुचित सरकार को भेजा जाएगा और समुचित सरकार के लिए यह आवश्यक है कि वह उसे, उसकी प्राप्ति की तारीख से तीस दिन के भीतर प्रकाशित करे।

7. औद्योगिक विवाद के न्यायनिर्णयन के उपबंधों से सुसंगत स्कीम से यह दर्शित होगा कि किसी बोर्ड, न्यायालय, श्रम न्यायालय, औद्योगिक अधिकरण या राष्ट्रीय अधिकरण द्वारा दिए गए अधिनिर्णय के विरुद्ध अपील का कोई उपबंध नहीं है। यह मान लिया जाता है कि उपर्युक्त प्राधिकारियों में से किसी का विनिश्चय दोषरहित और पक्षकारों को स्वीकार्य होगा, चाहे विवाद का परिणाम कुछ भी हो। अन्य सभी अधिकारिताओं में साधारणतया, प्रत्येक विनिश्चय के विरुद्ध अपील की जा सकती है। तथ्यों पर अपील होगी, द्वितीय अपील, विधि के प्रश्न पर होगी, संविधान के अनुच्छेद 136 के अधीन भारत के उच्चतम न्यायालय को अपील होगी। कृषि संबंधी सुधारों को लागू करने वाली जैसी सामाजिक रूप से फायदेमंद विधियों तक में सुसंगत विधियों में एक या दो अपीलों का उपबंध होता है। श्रम न्यायनिर्णयन का ही क्षेत्र ऐसा है कि उस कानून में जिसके अधीन न्यायनिर्णयन का आदेश दिया जा सकता है, किसी अपील न्यायालय का उपबंध नहीं है। इस विषय में काफी अधिक संख्या में विधिज्ञों की राय है कि जहां कोई प्रशासनिक या न्यायिक कल्प अधिकरण स्थापित करने वाला कोई कानून किसी अपील न्यायालय का उपबंध नहीं करता है वहां उस अधिकरण के विनिश्चय पर, संविधान के अनुच्छेद 226 का अवलंब लेकर, उच्च न्यायालय में आपत्ति की जाती है। अर्जी साधारणतया इस सत्याभासी दलील पर ग्रहण कर ली जाती है कि कोई आनुकल्पिक प्रभावकारी उपचार नहीं है। इस सिद्धांत को उस परिस्थिति पर लागू करते हुए जहां कानून अपील या पुनरीक्षण के लिए उपबंध करता है उच्च न्यायालय यह प्रश्न उठाता है कि क्या कानून के अधीन

आनुकल्पिक उपचार प्रभावकारी उपचार है। जहां कर उद्गृहीत करने वाला कानून किसी निर्धारक प्राधिकारी के विनिश्चय के विरुद्ध अपील का उपबंध करता है और अपील ग्रहण किए जाने के लिए, निर्धारिती कर के जमा किए जाने को पुरोभाव्य शर्त बनाता है वहां उच्चतम न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि आनुकल्पिक उपचार प्रभावकारी या पर्याप्त नहीं है।[1] कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम की स्कीम को समीक्षा करते समय भी यह विचार अपनाया गया था। यह कहा गया था कि उच्च न्यायालय यह अभिनिर्धारित करने में ठीक था कि अधिनियम के अधीन उपचार के लिए, अनुच्छेद 226 के अधीन उच्च न्यायालय के पास आने से पूर्व, प्रयास किया जाना चाहिए था।[2]

औद्योगिक विवाद अधिनियम के अधीन अपील के लिए किसी उपबंध के संपूर्ण अभाव के परिणामस्वरूप एक सहज प्रतिक्रिया हो सकती है और अनुच्छेद 226 का मुक्त रूप से अवलंब लिया जा सकता है। परिणाम क्या है? परिणाम यह है कि कोई भी व्यक्ति किसी श्रम न्यायालय, औद्योगिक अधिकरण या किसी राष्ट्रीय अधिकरण के प्रत्येक अधिनिर्णय को संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 के अधीन उच्च न्यायालय के समक्ष और संविधान के अनुच्छेद 136 के अधीन उच्चतम न्यायालय के समक्ष उत्प्रेषण कार्यवाही में प्रश्नगत कर सकता है। इस परिणाम का अधिक भोंडा पक्ष यह है कि जहां यह आरंभिक दलील पेश की जाती है कि निर्देश, विधि की दृष्टि से या तो अक्षम या दोषपूर्ण है वहां उच्च न्यायालय के समक्ष अनुच्छेद 226 और 227 के अधीन या उच्चतम न्यायालय के समक्ष अनुच्छेद 136 के अधीन प्रतिषेध रिट मांगी जाती है। यदाकदा, अनुच्छेद 32 का इस सत्याभासी दलील पर अवलंब लिया गया था कि ऐसी अविधिमान और अवैध कार्यवाहियों से, अनुच्छेद 19(1)(छ) द्वारा प्रत्याभूत, कोई वृत्ति, उपजीविका, व्यापार या कारबार करने के नियोजक के मूल अधिकार का उल्लंघन होता है। इसके अतिरिक्त ऐसे मामले भी हुए हैं जिनमें उच्च न्यायालयों और उच्चतम न्यायालय ने अंतवर्ती प्रक्रम पर रिट अर्जी को ग्रहण किया है और आगे की कार्यवाही को रोक दिया है, जिसका परिणाम यह हुआ कि विवाद के अंतिम न्यायनिर्णयन में अत्यधिक विलंब हुआ। ऐसी कार्यवाही को ग्रहण करते हुए न्यायालयों ने यह कहा है कि अपील के रूप में किसी सुधार मंच के अभाव में, विधि के नियम के प्रवर्तन के लिए, संविधान द्वारा प्रदत्त असाधारण अधिकारिता का अवलंब लेना अनिवार्य है।

8. सत्ताधारी पक्ष, संविधान के लागू होने के समय से इस सुभिन्न संभावना से अनभिज्ञ नहीं था तदनुसार, वर्ष 1950 में औद्योगिक विवाद (अपील अधिकरण) अधिनियम, 1950 नामक कानून के अधीन श्रम अपील अधिकरण स्थापित किया गया था और विनिर्दिष्ट विषयों के बारे में श्रम न्यायालयों/औद्योगिक न्यायालयों के अधिकरण के विरुद्ध अपील का उपबंध किया गया था।

9. श्रम अपील अधिकरण को दो प्रकार के कृत्य करने थे—

(i) वह मानव अविश्वसनीयता के विरुद्ध एक सुधारक अधिकरण होगा, और

(ii) वह सम्पूर्ण देश में परस्पर विरोधी और एक दूसरे से भिन्न अधिकरणों में एक राष्ट्रीय संश्लेषण लाएगा,

यह अंतर्राज्यीय संक्रियाओं वाले औद्योगिक स्थापनों के मामले में और भी आवश्यक था। वस्तुतः, श्रम अपील अधिकरण की स्थापना निर्बाध उत्पादन के हित में औद्योगिक शांति और स्थायित्व बनाए रखने के लिए, भिन्न-भिन्न औद्योगिक अधिकरणों के अधिनिर्णयों को शासित करने के लिए आधारभूत सिद्धांतों और मानकों की थोड़ी बहुत एकरूपता की आवश्यकता का सहज उत्तर था।

10. कुछ ऐसा हुआ कि कर्मकारों ने इस श्रम अपील अधिकरण को पसंद नहीं किया। श्रम अपील अधिकरण के विरुद्ध अपनी शिकायतों की आवाज उठाते हुए उन्होंने सारे देश में एक आंदोलन चला दिया। इस आंदोलन को भारतीय राष्ट्रीय व्यवसाय संघ कांग्रेस का जोरदार समर्थन प्राप्त हुआ। श्रम अपील अधिकरण के उत्सादन (समाप्त किए जाने) की मांग के समर्थन में, उन दिनों के मानकों के अनुसार, मुख्य विचार अपीलों के निपटारे में अति विलम्ब और परिणामस्वरूप लम्बी चलने वाली मुकदमेबाजी और कठिनाई का था। अधिनिर्णय से संभव है कुछ धनीय लाभ हुआ हो। जैसे ही नियोजक अपील करता था, साधारणतया अंतरिम रोक उसका परिणाम होता था। कर्मकार की संघर्ष में टिके रहने की शक्ति कमजोर होने के कारण वे मुकदमेबाजी की बढ़ाई गई अवधि को सहन करने में असमर्थ थे जब कि नियोजक उस अपील न्यायालय का उपयोग कर्मकारों की आकांक्षाओं को विफल करने और उन्हें पस्त करने के लिए करते थे। भारत में न्यायालयों और विशेष रूप से वरिष्ठ न्यायालयों के कार्यकरण का यह अनुभव रहा है कि विधायी प्रक्रिया समाज के

1. हिम्मत लाल हरिलाल मेहता बनाम मध्य प्रदेश राज्य, (1954) एस सी आर 1122 पृष्ठ 1128 पर।
2. वसंत कुमार सरकार बनाम ईगल रोलिंग मिल्स लिमिटेड और अन्य (1964), 6 एस सी आर 913 पृ० 918 पर।

धनी और आर्थिक रूप से सम्पन्न वर्ग के हाथ की कठपुतली और न्यायालयों के अनुचित उपयोग का साधन बन जाती है। एक अन्य तर्क यह था कि एक अपील न्यायालय के जोड़े जाने के साथ न्याय निर्णायक प्रक्रिया से व्यवसाय संघ की गतिविधियों में बाधा पहुंचेगी और वह व्यवसाय संघ कार्यालय को एक सालिसिटर के मंच के रूप में बदल देगी जिससे व्यवसाय संघ आंदोलन कमजोर पड़ जाएगा। उस समय प्रकट होने वाला युद्धघोष यह था कि जहां अपील अधिकरण किसी अधिनिर्णय को उलट देता है जिससे कुछ धनीय फायदा दिया जाता है वहां उसके कारण कड़वाहट पैदा हो जाती है और परस्पर प्रत्यारोप की भावना उत्पन्न होती है और नियोजकों तथा कर्मचारियों के बीच खाई गहरी हो जाती है जिससे औद्योगिक शांति को खतरा उत्पन्न होता है। भिन्न-भिन्न केंद्रीय व्यवसाय संघों ने इस सम्बन्ध में अलग-अलग दृष्टिकोणों को सामने रखा किंतु नारा एक ही था अर्थात् यह कि श्रम अपील अधिकरण को समाप्त किया जाए। भारतीय राष्ट्रीय व्यवसाय संघ कांग्रेस की ओर से इस बारे में जो शिकायतें सामने रखी गई उनमें से एक यह थी कि श्रम अपील अधिकरण में काम करने वाले कार्मिक उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के काडर से लिए जाते हैं जिन्हें अपने सक्रिय जीवन में शायद ही कभी श्रम मामलों का निपटारा करना पड़ा हो और जो यथास्थिति, वितरक न्याय या सामाजिक न्याय के विषय में कार्यवाही करने के लिए अक्षम हैं तथा उनका प्रशिक्षण और पालन-पोषण जिस प्रकार हुआ है उसके कारण उनका दृष्टिकोण यांत्रिक और विधिवादी होता है। कदाचित्, बोनस के प्रश्न पर पूर्ण पीठ के फार्मूले ने आग में घी का काम किया। श्रम अपील अधिकरण को कायम रखने के विरुद्ध विभिन्न आपत्तियों पर विचार न करते हुए एक आपत्ति, जो प्रमुख आपत्ति थी, उल्लेख किया जा सकता है। वह आपत्ति यह थी कि उससे अधिनिर्णय को अंतिम रूप से क्रियान्वित करने में विलम्ब होता है और स्थिति और अनिश्चित हो जाती है। श्रम की आवाज का असर हुआ और अंततः सितम्बर, 1956 में श्रम अपील अधिकरण समाप्त कर दिया गया और स्थिति फिर वही हो गई जो श्रम अपील अधिकरण की स्थापना से पूर्व थी। मध्यवर्ती और अंतिम, दोनों, प्रक्रमों पर प्रत्येक अधिनिर्णय को, न्यूनाधिक, अनुच्छेद 226, 227 के अधीन उच्च न्यायालय के समक्ष और संविधान के अनुच्छेद 136 के तथा अनुच्छेद 32 के भी अधीन उच्चतम न्यायालय के समक्ष प्रश्नगत किया जाने लगा।

11. देखना यह है कि श्रम अपील अधिकरण को समाप्त करने के 30 वर्ष पश्चात् अब स्थिति क्या है? यदि विवादों को अपील अधिकरण जारी रखने से उनके निपटारे में विलम्ब पर व्यापक आपत्ति की जाती थी और उसी के आधार पर अपील अधिकरण को समाप्त करने का प्रयास किया जाता था, तो फिर इस समय स्थिति तो भयंकर है। भारत के उच्चतम न्यायालय में 31-12-1985 को श्रम विधियों के आधीन 953 मामले लम्बित थे और वे 1971 से 1985 तक के मामले थे। वह विवाद जो उच्चतम न्यायालय के समक्ष 1971 में आया है और जो यहां 15 वर्ष से लम्बित है, यदि वह उच्च न्यायालय में होकर नहीं आया है तो 1971 से कम से कम पांच वर्ष पूर्व और यदि वह उच्च न्यायालय में होकर आया है तो वह 1971 से 10 वर्ष पूर्व श्रम न्यायालय के समक्ष आरम्भ हुआ होगा। हिसाब चाहे किसी प्रकार लगाया जाए, भारत के उच्चतम न्यायालय में लंबित 1971 के विवाद अब 25 वर्ष से अधिक समय से लम्बित हैं। इसी प्रकार, वर्ष 1982 के अन्त में, 18 उच्च न्यायालयों में लम्बित श्रम मामलों की संख्या 5766 थी। सात उच्च न्यायालयों के सम्बन्ध में 31 दिसम्बर, 1985 तक, जिसमें वह दिन भी सम्मिलित है, के उपलब्ध आंकड़ों से पता चलता है कि उनमें 10,233 मामले लम्बित थे। तीन वर्ष में लम्बित मामलों की संख्या दुगुनी हो गई है। उनके लम्बित रहने का कोई स्वीकार्य विस्तृत विश्लेषण और अवधि का हिसाब तैयार करना कठिन है। बहरहाल यह अवधि न्यायनिर्णयन अधिकरण से पूर्व लगने वाले समय को छोड़ कर पांच वर्ष से कम नहीं होगी। यदि हम फिर उसी शिकायत पर आएं कि श्रम अपील अधिकरण उसके समक्ष आने वाली अपीलों का विनिश्चय करने के लिए लगातार दो वर्ष का समय लेता है जो इतना अधिक समय समझा गया कि उस अभिकरण को समाप्त करने की मांग की गई तो वर्तमान स्थिति के बारे में कोई क्या कहेगा जहां मामले उच्च न्यायालय और उच्चतम न्यायालय में दस वर्ष से अधिक समय से लम्बित हैं? उत्सादन (समाप्त किए जाने) के समर्थकों को भी यह विश्वास था कि उच्चतम न्यायालय त्वरित निपटारे और राष्ट्रीय अनरूपता की स्थिति ला सकेगा उन्हें वर्तमान स्थिति से कितना धक्का लगा होगा?

12. इस प्रणाली को दो बातें उभर कर सामने आई हैं। उच्च न्यायालय से बचने और उच्चतम न्यायालय में भाग कर जाने की साधारण प्रवृत्ति रही है क्योंकि श्रम न्यायालय/औद्योगिक न्यायालय ऐसा अधिकरण है जिसके आदेशों और अधिनिर्णयों का न्यायिक दृष्टि से पुनर्विलोकन अनुच्छेद 136 के अधीन भारत के उच्चतम न्यायालय द्वारा किया जा सकता है। किंतु यदि मामला उच्च न्यायालय में ले भी जाया जाता है तो भी विलम्ब अत्यधिक होता है। व्यक्तियों को प्रभावित करने वाले औद्योगिक विवाद जैसे कि पदच्युति, सेवा समाप्ति, अवचार; वैयक्तिक धनीय फायदे के लिए दण्ड; उच्च न्यायालय और उच्चतम

न्यायालय में प्रभावकारी न्याय पाने की दृष्टि से नहीं बल्कि एक कमजोर प्रतिपक्षी अर्थात् कर्मकार पर, इस बात को ध्यान में रखते हुए कि उसकी टिकने की शक्ति सीमित है, एक अनुचित समझौता थोपने के लिए खींचे जाते हैं। इस सम्बन्ध में दो मामलों का उदाहरण दिया जा सकता है।[1]

गोयल के मामले में कर्मकार को जुलाई 1965 में बैंक ऑफ बड़ौदा की सेवा से निलम्बित किया गया था। उसने औद्योगिक विवाद अधिनियम की धारा 10 के अधीन निर्देश की मांग की जो मंजूर की गई। अधिकरण ने उस निर्देश को एक बहुत मामूली से आधार पर अविधिमान्य अभिनिर्धारित किया। उच्चतम न्यायालय ने 1978 में उस निर्देश को विधिमान्य अभिनिर्धारित किया और उसे गुणागुण के आधार पर अधिनिर्णय के लिए वापस भेज दिया। इस अधिनिर्णय पर आपत्ति की गई और मामला उच्चतम न्यायालय में लाया गया। यथापूर्वकरण 18-7-1979 को मंजूर किया गया और रोक दिया गया। अंततः वह अपने निलम्बन के अठारह वर्ष पश्चात् अर्थात् 1983 में सेवा में वापस गया।

शम्भूनाथ मुखर्जी वाले दूसरे मामले में तथ्य और अधिक वीभत्स हैं। उसका नाम नामावली से 19 जनवरी, 1966 को काट दिया गया था। 30 मई, 1984 को उसकी मृत्यु हुई और उस समय तक उच्च न्यायालय और उच्चतम न्यायालय में न्याय की मृगमारिचिका के पीछे भागता रहा।[2]

13. अखिल भारतीय अधिकारिता वाले अपील अधिकरण की दूसरी विशेषता यह है कि वह अपने अधिनिर्णय द्वारा औद्योगिक सम्बन्धों के मानकों में थोड़ी बहुत एकरूपता ला सकता है और श्रम न्यायालयों तथा औद्योगिक अधिकरणों के मार्ग दर्शन के लिए सिद्धांत निर्धारित कर सकता है। यह प्रत्यक्ष है कि उच्च न्यायालय यह एकरूपता नहीं ला सकता है क्योंकि उसकी अधिकारिता उस राज्य तक सीमित है जिसमें वह काम करता है। ऐसे अनेक बड़े औद्योगिक उपक्रम हैं जिनकी अन्तर्राज्यीय संक्रियाएं हैं। जीवन बीमा निगम, साधारण बीमा निगम आदि जैसे एकाधिकार भी हैं जिनकी अखिल भारतीय संक्रियाएं हैं। इसी प्रकार, भारत पैट्रोलियम, हिंदुस्तान पैट्रोलियम आदि जैसे उत्पादक संघ भी हैं जो औद्योगिक नियोजकों की कोटि में आते हैं और श्रम न्यायालयों/औद्योगिक अधिकरणों द्वारा, जो देश के विभिन्न भागों में काम कर रहे हैं, दिए गए परस्पर विरोधी अधिनिर्णयों के तथा स्थानीय राज्य सरकारों की अधिकारिता के अधीन हैं। औद्योगिक सम्बन्धों के मानकों के स्वस्थ विकास के लिए यह सहायक नहीं है। इसके अतिरिक्त अन्तर्राज्यीय संक्रियाओं वाले ये औद्योगिक उपक्रम अपने को उनके कर्मचारियों के बीच कुछ विभेदक व्यवहार लागू करने वाले अलग-अलग अधिनिर्णयों के अधीन भी पाते हैं।

14. क्या उच्चतम न्यायालय देश में सर्वत्र लागू होने वाले, औद्योगिक न्यायनिर्णयन के एकरूप मानक स्थापित करने का कार्य कर सकता है? श्रम अपील अधिकरण के समाप्त किए जाने के समर्थक यही आशा करते थे। यह स्पष्ट कर देना उचित होगा कि उच्चतम न्यायालय की कल्पना एक अपील न्यायालय के रूप में नहीं की गई थी। वह कुछ ऐसी स्पष्ट त्रुटियों को जिनमें न्याय या संवैधानिक उपबन्धों की हानि, अन्तर्वलित हो, ठीक करने के लिए अधिकारिता के एक अत्यन्त व्यापक बाहुल्य वाला निकाय था। वह उस अर्थ में जिसमें अपील न्यायालय कार्य करता है, अपील न्यायालय के रूप में कार्य नहीं कर सकता है। अतः यह अनिवार्य है कि उच्चतम न्यायालय के स्तर से नीचे के स्तर पर कार्य करने वाला अखिल भारतीय अधिकारिता रखने वाला एक निकाय हो जो औद्योगिक सम्बन्धों के मानकों में एकरूपता ला सकता है और जो अन्तर्राज्यीय संक्रियाओं वाले औद्योगिक उपक्रमों में विवादों के निपटारे में थोड़ी-बहुत एकरूपता ला सके।

15. राष्ट्रीय श्रम आयोग ने श्रम अपील अधिकरण की समाप्ति से सृजित शून्य का निकट से अध्ययन करने के पश्चात् राष्ट्रीय स्तरों और राज्य स्तरों, दोनों स्तर, पर एक औद्योगिक सम्बन्ध आयोग की स्थापना की सिफारिश की। उसने श्रम न्यायालयों को जारी रखने और उनके विनिश्चयों पर उच्च न्यायालय में अपील की सिफारिश की[3]। श्रम न्यायालय के अधिनिर्णय या विनिश्चय राष्ट्रीय स्तर पर एकरूपता लाने में सहायक सिद्ध नहीं होंगे। उच्च न्यायालयों में परस्पर मतभेद होता है और फिर उच्चतम न्यायालय से कहा जाता है कि वह उस परस्पर विरोध को दूर करने के लिए हस्तक्षेप करे और इसमें विलम्ब अनिवार्य है।

16. राष्ट्रीय श्रम आयोग ने इस पहलू पर जब विचार किया उससे पूर्व भी भारत के विधि आयोग ने इस पहलू की समीक्षा की थी। विधि आयोग ने भारत के उच्चतम न्यायालय की फाइल पर श्रम मामलों में लम्बित अपीलों पर ध्यान देते हुए यह मत व्यक्त किया कि :—

"एक प्रकार से ये मामले न्यायालय पर थोपे गए हैं क्योंकि[3] न्यायालय उन विनिश्चयों के विरुद्ध अपीलों को ग्रहण करने से इन्कार नहीं कर सकता है जो मनमाने और स्वेच्छाचारी और विधि एवं

1. शंभूनाथ गोयल बनाम बैंक आफ बड़ौदा, 1978, 2 एस सी सी, 353।
2. दिल्ली क्लाथ एण्ड जनरल मिल्स लि० बनाम शंभूनाथ मुखर्जी, 1984, सप्लीमेंट एस सी सी 534।
3. श्रम पर राष्ट्रीय श्रम आयोग की रिपोर्ट अध्याय 23, पैरा 23.63 से 33.66 तक, पृष्ठ 312-335।

नैसर्गिक न्याय के जाने-माने सिद्धान्तों की अवहेलना करके किए गए प्रतीत होते हैं। यह देखा जा सकता है कि उच्चतम न्यायालय इन मामलों में विशेष इजाजत के लिए किए गए अधिसंख्य आवेदन श्रम अपील अधिकरणों के उत्सादन के समय किए गए हैं। नया श्रम विधान ऐसे अधिकरण गठित करता है जिनके विनिश्चयों के विरुद्ध कोई अपील नहीं हो सकती है। अतः यह अस्वभाविक नहीं है कि अनुचित या मनमाने विनिश्चयों वाले अधिकांश मामलों में उच्चतम न्यायालय में अपील करने की विशेष इजाजत के वास्ते आवेदन किए जाते हैं। व्यथित पक्षकार उच्चतम न्यायालय में जाता है क्योंकि अनुच्छेद 226 के अधीन उच्च न्यायालय की अधिकारिता इन मामलों में अनुतोष देने के लिए अत्यन्त सीमित है। अनुच्छेद 226 के अधीन, उच्च न्यायालय इन अधिकरणों द्वारा किसी आदेश को केवल अभिखण्डित कर सकता है किन्तु वह स्वयं विनिश्चय करके उसे अधिकरण के विनिश्चय के स्थान पर प्रतिस्थापित नहीं कर सकता है। सामान्यता कहा जाए तो उच्च न्यायालय इन आदेशों को केवल उन मामलों में अभिखण्डित करेगा जिनमें अधिकारिता से बाहर जा कर विनिश्चय दिया गया है या जिनमें अभिलेख को देखते ही विधि की त्रुटि स्पष्ट है या जिनमें नैसर्गिक न्याय के सिद्धान्तों का या उसी के समान कोई उल्लंघन हुआ है। अतः, यह अनिवार्य है कि विधान-मण्डल इसमें हस्तक्षेप करे और इन मामलों में अपील के पर्याप्त अधिकार का उपबंध करे।

17. उच्च न्यायालय और उच्चतम न्यायालय कार्य की भरमार के भारी दबाव में हैं। जब न्यायालय एक प्रकार के मुकदमेबाजी को नियंत्रित करने की कोशिश करता है तब दूसरे प्रकार की मुकदमेबाजी नियंत्रण से बाहर हो जाती है। उच्च न्यायालय सारे वर्ष के लिए एक श्रम पीठ की व्यवस्था करने में असमर्थ है। यही हाल उच्चतम न्यायालय का है। इसका अशिक्षाप्रद परिणाम यह है कि सबसे अधिक विलम्ब उच्चतम न्यायालय के स्तर पर होता है, उसकी तुलना में उच्च न्यायालय के स्तर पर कुछ कम विलम्ब होता है और कुल मिला कर श्रम न्यायालय/औद्योगिक अधिकरण के समक्ष त्वरित निपटारा होता है। इस उल्टी परिस्थिति से स्पष्ट रूप से पता चलता है कि श्रम अपील अधिकरण का उत्सादन (समाप्त किया जाना) अदूरदर्शी कार्य था। यदि अधिकरण में काम करने वाले कार्मिकों के बारे में शिकायत में कोई औचित्य था तो इसका विवेकपूर्ण हल जनशक्ति समस्या से निपटना था न कि स्वयं उस निकाय को समाप्त कर देना।

18. विधि आयोग की राय है कि अब इस स्थिति के सभी पहलुओं का पुनर्विलोकन करने का समय आ गया है। उच्च न्यायालय और उच्चतम न्यायालय मामलों को ग्रहण करते जाएंगे क्योंकि श्रम न्यायालय/औद्योगिक अधिकरण त्रुटियां कर सकते हैं। यद्यपि उच्च न्यायालय की अधिकारिता संकीर्ण है तथापि मामलों से इस प्रकार निपटा जाता है मानो ये न्यायालय अपील की सुनवाई कर रहे हैं। ऐसे मामले अज्ञात नहीं हैं जिनमें अधिनिर्णयों में इस बहाने हस्तक्षेप किया जाता है कि निष्कर्ष अनुचित हैं और विलम्ब बहुत अधिक हुआ है। उदाहरण के लिए, पलकारों और समाचारपत्र नियोजकों के बीच मजदूरी के ढांचे वाले मामले में पालेकर अधिनिर्णय की शुद्धता को प्रश्नगत करने वाले कुछ मामले उच्चतम न्यायालय में अभी तक लंबित है यद्यपि बछावत आयोग गठित किया जा चुका है और उसने लगभग एक वर्ष पूर्व कार्य करना आरम्भ कर दिया था। यह सोचकर कोई भी भौंचक्का रह जाएगा कि जब तक बछावत आयोग अपनी सिफारिश को अंतिम रूप नहीं दे देता है तब तक पालेकर अधिनिर्णय से प्रभावित व्यक्ति इस बात के लिए निश्चित नहीं है कि भारत के उच्चतम न्यायालय के विचार-विमर्श का परिणाम क्या होगा। उपचारी उपाय अनिवार्य हो गया है।

19. विधि आयोग के पास मामलों के त्वरित निपटारे और बकाया मामलों को समाप्त करने की खोज में, श्रम न्यायालय/औद्योगिक अधिकरणों के अधिनिर्णयों के ऊपर अधिकारिता रखने वाले एक औद्योगिक संबंध आयोग की सिफारिश की एक अस्थायी योजना है। यह आयोग अलग-अलग पीठों के रूप में बैठ सकता है। उसे अखिल भारतीय अधिकारिता प्राप्त होगी। सामाजिक न्याय, औद्योगिक संबंधों, मानकों, उद्योग में शांति और मैत्री भाव, वर्ग संघर्ष से बचने, औद्योगिक संपन्नता की अभिवृद्धि आदि की भावनाओं से अनुप्रमाणित जनशक्ति की व्यवस्था करने के प्रयास किए जाएंगे। अतः विधि आयोग आपसे अनुरोध करता है कि आप इस परिचायक भाग के उपाबंध में दिए गए प्रश्नों का उत्तर देने और उसे भारत के विधि आयोग के पास 15 मार्च, 1987 को या उससे पूर्व भेजने की कृपा करें।

उपाबंध

प्रश्न

1. क्या आप श्रम न्यायालयों/औद्योगिक अधिकरण के अधिनिर्णयों पर अखिल भारतीय अधिकारिता रखने वाले अपील न्यायालय/अधिकरण के पक्ष में हैं ?

2. यदि प्रथम प्रश्न का उत्तर "हां" हो तो क्या आप उस न्यायालय/अधिकरण के स्वरूप और रूप विधान के बारे में सुझाव देंगे ?

3. क्या श्रम अपील अधिकरण को पुनरुज्जीवित करना उचित होगा ?

4. ऐसे अपील न्यायालय के समक्ष अपीलों की सुनवाई में शीघ्रता लाने के लिए आप किन उपायों का सुझाव देंगे ?

5. ऐसे अपील न्यायालय के लिए कार्मिक का चयन करने के लिए आप के विचार से क्या मानदंड होना चाहिए ?

6. कार्मिक के चयन की शक्ति किस में निहित की जाए ?

7. क्या ऐसे अपील न्यायालय में अधिनिर्णय की अशर्त या सदैव शर्तों के अधीन रहते हुए, अंतरिम रोक को मंजूर करने की शक्ति निहित होनी चाहिए अथवा ऐसी कोई शक्ति प्रदान नहीं की जानी चाहिए ?

   [औद्योगिक विवाद (संशोधन) अधिनियम, 1982 द्वारा औद्योगिक विवाद अधिनियम में हाल ही में जोड़ी गई धारा 17ख को ध्यान में रखने की कृपा करें, जिसमें उच्चतर न्यायालयों में कार्यवाही के लंबित रहने के दौरान कर्मकार को पूरी मजदूरी के संदाय का उपबंध है।]

8. आप की राय में, अपीलों के निपटारे के लिए क्या टाइम फ्रेम (समय कार्यक्रम) होना चाहिए ?

9. क्या आप प्रत्येक अधिनिर्णय को अपीलनीय बनाए जाने के पक्ष में हैं या अपील केवल विधि के प्रश्न पर होनी चाहिए जैसा कि कर्मकार प्रतिकर अधिनियम, 1923 की धारा 30 में या औद्योगिक विवाद (अपील अधिकरण) अधिनियम, 1950 की धारा 8 में है ?

10. क्या आप अंतरिम स्तर पर किसी भी अपील के ग्रहण किए जाने पर पूरी रोक के पक्ष में हैं ?

11. यदि इसमें बताया गया न्यायालय स्थापित किया जाता है तो क्या अनुच्छेद 226, 227 के अधीन उच्च न्यायालय की अधिकारिता को कायम रखना चाहिए या उसे समाप्त कर दिया जाना चाहिए ; इस संबंध में आप संविधान के अनुच्छेद 323ख पर विचार कर सकते हैं ?

परिशिष्ट 2

(पैरा 2.4, 5.22)

औद्योगिक और श्रम विधियों की सूची

1. शिशु अधिनियम, 1961
2. बीड़ी तथा सिगार कर्मकार (नियोजन की शर्तें) अधिनियम, 1966
3. बीड़ी कर्मकार कल्याण उपकर अधिनियम, 1976
4. बीड़ी कर्मकार कल्याण निधि अधिनियम, 1976
5. बायलर अधिनियम, 1923
6. बन्धित श्रम पद्धति (उत्सादन) अधिनियम, 1976
7. बालक (श्रम गिरवीकरण) अधिनियम, 1933
8. सिनेमा कर्मकार और सिनेमा थियेटर कर्मकार(नियोजन का विनियमन)अधिनियम, 1981
9. सिनेमा कर्मकार कल्याण उपकर अधिनियम, 1981
10. सिनेमा कर्मकार कल्याण निधि अधिनियम, 1981
11. कोयला खान श्रम कल्याण निधि अधिनियम, 1947
12. कोयला खान भविष्य निधि तथा प्रकीर्ण उपबन्ध अधिनियम, 1948
13. ठेका श्रम (विनियमन और उत्सादन) अधिनियम, 1970
14. खतरनाक मशीन (विनियमन) अधिनियम, 1983
15. डाक श्रमिक अधिनियम, 1934
16. डाक कर्मकार (नियोजन का विनियमन) अधिनियम, 1948
17. उत्प्रवास अधिनियम, 1983
18. कर्मचारी भविष्य निधि और प्रकीर्ण उपबंध अधिनियम, 1952
19. कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम, 1948
20. नियोजक दायित्व अधिनियम, 1938
21. बालक श्रम (प्रतिषेध और विनियमन) अधिनियम, 1986
22. नियोजनालय (रिक्तियों की अनिवार्य अधिसूचना) अधिनियम, 1959
23. समान पारिश्रमिक अधिनियम, 1976
24. कारखाना अधिनियम, 1948
25. घातक दुर्घटना अधिनियम, 1855
26. औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947
27. औद्योगिक विवाद (बैंककारी तथा बीमा कंपनियां) अधिनियम, 1949
28. औद्योगिक विवाद (बैंककारी कंपनी) विनिश्चय अधिनियम, 1955
29. औद्योगिक नियोजन (स्थायी आदेश) अधिनियम, 1946
30. उद्योग (विकास और विनियमन) अधिनियम, 1951
31. अंतर्राज्यिक प्रवासी कर्मकार (नियोजन का विनियमन और सेवा शर्तें) अधिनियम, 1979
32. लौह अयस्क खान, मैंगनीज अयस्क खान और क्रोम अस्यक खान कल्याण उपकर अधिनियम, 1976
33. लोह अयस्क खान, मैंगनीज अयस्क खान और क्रोम अयस्क खान श्रम कल्याण निधि अधिनियम, 1976

34. चूना पत्थर और डोलोमाइट खान श्रम कल्याण निधि अधिनियम, 1972
35. प्रसूति प्रसुविधा अधिनियम, 1961
36. अभ्रक खान श्रम कल्याण निधि अधिनियम, 1946
37. खान अधिनियम, 1952
38. न्यूनतम मजदूरी अधिनियम, 1948
39. मोटर परिवहन कर्मकार अधिनियम, 1961
40. बोनस संदाय अधिनियम, 1965
41. उपदान संदाय अधिनियम, 1972
42. मजदूरी संदाय अधिनियम, 1936
43. वैयक्तिक क्षति (प्रतिकर बीमा) अधिनियम, 1963
44. बागान श्रम अधिनियम, 1951
45. विक्रय संवर्धन कर्मचारी (सेवा शर्तें) अधिनियम, 1976
46. व्यवसाय संघ अधिनियम, 1926
47. साप्ताहिक अवकाश दिन अधिनियम, 1942
48. श्रमजीवी पत्रकार और अन्य समाचारपत्र कर्मचारी (सेवा की शर्तें) और प्रकीर्ण उपबंध अधिनियम, 1955
49. श्रमजीवी पत्रकार (मजदूरी दर नियतन) अधिनियम, 1958
50. कर्मकार प्रतिकर अधिनियम, 1923
51. सांख्यकीय संग्रहण अधिनियम, 1953

88-M/B(N)318MofLJ&CA—5

परिशिष्ट 3

भाग क

(पैरा 2.18)

1 अक्तूबर, 1987 को अनुच्छेद 136 के अधीन उच्चतम न्यायालय में लम्बित श्रम मामले

वर्ष	श्रम मामले		
	तैयार	तैयार नहीं	योग
	(1)	(2)	(3)
1973	3	1	4
1974	—	1	1
1975	2	4	6
1976	5	1	6
1977	24	8	32
1978	7	33	40
1979	25	48	73
1980	27	23	50
1981	21	20	41
1982	41	23	64
1983	04	80	84
1984	04	77	81
1985	12	52	64
1986	18	45	63
1987	05	76	81
योग	198	492	690

भाग ख

(पैरा 2.18/4.8)

उच्चतम न्यायालय में 1-1-1986 को वर्षवार गैर-संवैधानिक श्रम मामलों की/लम्बित नियमित सुनवाई की संख्या

वर्ष	श्रम
1969	—
1970	—
1971	2
1972	—
1973	6
1974	4
1975	7
1976	11
1977	36
1978	42
1979	74
1980	53
1981	48
1982	68
1983	94
1984	123
1985	385
योग	953

परिशिष्ट 4

(पैरा 3.2)

18-11-1987 के लिए लोक सभा अतारांकित प्रश्न सं० 1793 के भाग (क) और (ख) के उत्तर में विवरण

विवरण 1

उच्च न्यायालयों में लम्बित मामलों की संख्या घटते हुए क्रम में

क्रम सं०	उच्च न्यायालय का नाम	लम्बित मामलों की संख्या	किस तारीख को
1.	इलाहाबाद	288060	30-6-86
2.	मद्रास	187250	31-12-86
3.	कलकत्ता	156447	31-12-86
4.	बम्बई	133245	30-6-87
5.	केरल	120890	30-6-86
6.	आंध्र प्रदेश	86137	30-6-87
7.	दिल्ली	77191	30-6-87
8.	कर्नाटक	66741	31-12-86
9.	पटना	56904	31-12-85
10.	मध्य प्रदेश	53888	31-12-86
11.	पंजाब और हरियाणा	53568	30-6-87
12.	गुजरात	52623	30-6-87
13.	राजस्थान	48921	31-12-85
14.	उड़ीसा	37854	30-6-87
15.	जम्मू और कश्मीर	35945	30-6-87
16.	गौहाटी	17880	31-12-86
17.	हिमाचल प्रदेश	8820	31-12-86
18.	सिक्किम	36	30-6-87
	योग	14,82,450	

परिशिष्ट 5

(पैरा 4.7/2.18)

उच्च न्यायालयों में 1977 से 1985 तक लम्बित श्रम विधियों के अधीन मामलों का विवरण

उच्च न्यायालय का नाम	1977	1988	1979	1980	1981	1982	1983	1984	1985
1	2	3	4	5	6	7	8	9	10
1. बम्बई	1109	1346	1308	1078	7184	–	2679	3061	3226
2. सिक्किम	–	–	–	–	–	–	–	–	–
3. हिमाचल प्रदेश	–	–	–	6	5	5	12	15	17
4. उड़ीसा	–	37	76	115	131	301	1345	1174	803
5. पटना	136	180	173	245	350	–	462	471	534
6. पंजाब और हरियाणा	–	–	–	–	–	552	603	671	919
7. दिल्ली	681	674	813	842	761	–	830	885	900
8. केरल	–	234	214	290	356	300	615	661	895
9. गुजरात	–	54	151	146	233	637	976	1410	1991
10. मध्य प्रदेश	–	–	–	–	–	–	–	–	–
11. गुवाहाटी	–	–	–	47	69	70	15	25	32
12. जम्मू-कश्मीर	–	–	–	–	49	–	–	–	–
13. इलाहाबाद	627	610	676	685	1119	1166	1249	1675	1961
14. आन्ध्र प्रदेश	–	324	367	503	730	691	753	916	1215
15. मद्रास	1314	736	711	1105	1332	–	–	–	–
16. राजस्थान	–	192	280	363	347	635	174	258	365
17. कर्नाटक	–	434	579	468	735	508	1432	2381	1960
18. कलकत्ता	–	296	376	444	334	631	–	–	–
योग	3867	5117	5724	6337	8155	5796	11145	13603	14818

परिशिष्ट 5 का उपबंध

श्रम विधियों के अधीन मामले जो उच्च न्यायालयों में लम्बित हैं (न्याय विभाग द्वारा दी गई जानकारी के अनुसार)

1-1-85 को लम्बित	वर्ष 1985 के दौरान संस्थित	वर्ष के दौरान निपटाए गए	31-12-85 को लम्बित
13545	8262	4557	17250

परिशिष्ट 6

(पैरा 5.22)

श्रम विधियों की सूची जिसमें विवादों के निपटारे और अपील प्राधिकारियों के बारे में उपबंध उपदर्शित किए गए हैं ।

क्रम सं०	अधिनियम का नाम	आरंभिक प्राधिकारी के बारे में उपबंध	विवादों का विनिश्चय करने वाला प्राधिकारी	अपील प्राधिकारी के बारे में उपबंध	अपील प्राधिकारी	संज्ञान
1	2	3	4	5	6	7
1.	शिक्षु अधिनियम, 1961	20(1)	शिक्षुता सलाहकार	20(2)	शिक्षुता परिषद्	–
2.	बीड़ी और सिगार कर्मकार (नियोजन की शर्तें) अधिनियम, 1966	4	सक्षम प्राधिकारी	5	राज्य सरकार द्वारा विनिर्दिष्ट प्राधिकारी	–
3.	बीड़ी कर्मकार कल्याण उपकर अधिनियम, 1976	–	–	–	–	–
4.	बीड़ी कर्मकार कल्याण निधि अधिनियम, 1976	–	–	–	–	–
5.	भारतीय बायलर अधिनियम, 1923	6	निरीक्षक	–	मुख्य निरीक्षक	–
6.	बंधित श्रम पद्धति (उत्सादन) अधिनियम, 1976	10 21	जिला मजिस्ट्रेट कार्यपालक मजिस्ट्रेट या न्यायिक मजिस्ट्रेट	–	–	दंड प्रक्रिया संहिता के उपबंध लागू होते हैं।
7.	बालक (श्रम गिरवीकरण) अधिनियम, 1933	–	–	–	–	–
8.	सिनेमा कर्मकार और सिनेमा थियेटर कर्मकार (नियोजन का विनियमन) अधिनियम, 1981	4 5	सुलह अधिकारी अधिकरण	–	–	पुनर्विलोकन की शक्तियां उच्च न्यायालय के पास हैं किसी भी न्यायालय को, राज्य सरकार की अनुज्ञा से किए गए परिवाद पर के सिवाय अपराध का संज्ञान नहीं करना चाहिए ।
9.	सिनेमा कर्मकार कल्याण उपकर अधिनियम, 1981	–	–	–		–
10.	सिनेमा कर्मकार कल्याण निधि अधिनियम, 1981	–	–	–	–	–
11.	कोयला खान श्रम कल्याण निधि अधिनियम, 1947	–	–	–	–	–
12.	कोयला खान भविष्य निधि और प्रकीर्ण उपबंध अधिनियम, 1948	–	–	–	–	–

परिशिष्ट 6—जारी

1	2	3	4	5	6	7
13.	सांख्यिकीय संग्रहण अधिनियम, 1953	–	–	–	–	सांख्यिकीय प्राधिकारी की अनुज्ञा के बिना कोई शास्ति अधिरोपित नहीं की जाएगी ।
14.	ठेका श्रम (विनियमन और उत्सादन) अधिनियम, 1970	धारा 6	रजिस्ट्रीकर्ता अधिकारी	धारा 15	अपील अधिकारी	निरीक्षण की पूर्व मंजूरी से अभियोजन चलाया जा सकेगा ।
15.	खतरनाक मशीन (विनियमन) अधिनियम, 1983	धारा 5	नियंत्रक	34	राज्य सरकार	नियंत्रक द्वारा परिवाद का संज्ञान न्यायालय द्वारा किया जाएगा ।
16.	डाक श्रमिक अधिनियम, 1934	3	निरीक्षक	–	–	निरीक्षक की पूर्व मंजूरी से ही अभियोजन, अन्यथा नहीं ।
17.	डाक कर्मकार (विनियमन और नियोजन) अधिनियम, 1948	–	–	–	–	अधिकारी या निरीक्षक की रिपोर्ट पर अपराध का संज्ञान ।
18.	उत्प्रवास अधिनियम, 1983	धारा 15	सक्षम अधिकारी	धारा 23	केन्द्रीय सरकार	अधिनियम के अधीन अपराध संज्ञेय है धारा 26।
19.	कर्मचारी भविष्य निधि और प्रकीर्ण उपबंध अधिनियम, 1952	धारा 5क धारा 5ख धारा 5ग	केन्द्रीय/राज्य बोर्ड	–	–	केन्द्रीय भविष्य निधि आयुक्त की पूर्व मंजूरी से अभियोजन ।
20.	कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम, 1948	धारा 54	चिकित्सा बोर्ड	54क	चिकित्सा अपील अधिकरण या कर्मचारी बीमा न्यायालय	–
21.	नियोजक दायित्व अधिनियम, 1938	–	–	–	–	–
22.	बालक श्रम (प्रतिषेध और विनियमन) अधिनियम, 1986	धारा 17	निरीक्षक	–	–	महानगर मजिस्ट्रेट के न्यायालय से निचला कोई न्यायालय अपराध का विचारण नहीं करेगा ।
23.	नियोजनालय (रिक्तियों की अनिवार्य अधिसूचना) अधिनियम, 1959	–	–	–	–	सरकार द्वारा प्राधिकृत अधिकारी की अनुज्ञा से ही कोई अभियोजन संस्थित किया जाएगा, अन्यथा नहीं ।
24.	समान पारिश्रमिक अधिनियम, 1976	धारा 9	निरीक्षक	–	–	—यथोक्त—
25.	कारखाना अधिनियम, 1948	धारा 8	निरीक्षक	धारा 107	विहित प्राधिकारी	–
26.	घातक दुर्घटना अधिनियम, 1855	–	–	–	–	–

परिशिष्ट 6—जारी

1	2	3	4	5	6	7
27.	औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947	7क 7ख	अधिकरण राष्ट्रीय अधिकरण न्यायालय	– –	–	–
28.	औद्योगिक विवाद (बैंककारी और बीमा कंपनियां) अधिनियम, 1949	–	–	–	–	–
29.	औद्योगिक विवाद (बैंककारी कंपनी) विनिश्चय अधिनियम, 1955		–	–	–	–
30	औद्योगिक नियोजन (स्थायी आदेश) अधिनियम, 1946	धारा 5(2)	प्रमाणकर्ता आफिसर	धारा 107	विहित प्राधिकारी	समुचित सरकार की पूर्व मंजूरी से ही कोई अभियोजन आरंभ किया जा सकता है, अन्यथा नहीं ।
31.	उद्योग (विकास और विनियमन) अधिनियम, 1951	–	–	–	–	–
32.	अंतर्राज्यिक प्रवासी कर्मकार (नियोजन का विनियमन और सेवा शर्तें) अधिनियम, 1979	धारा 7	अनुज्ञापन अधिकारी	धारा 11	अपील अधिकारी	–
33.	लोह अयस्क खान, मगनीज अयस्क खान और क्रोम अयस्क खान श्रम कल्याण उपकर अधिनियम, 1976	–	–	–	–	–
34.	लोह अयस्क खान, मैंगनीज अयस्क खान और क्रोम अयस्क खान श्रम कल्याण निधि अधिनियम, 1976	–	–	–	–	–
35.	चूना पत्थर और डोलोमाइट खान श्रम कल्याण निधि अधिनियम, 1972	–	–	–	–	–
36.	प्रसूति प्रसुविधा अधिनियम, 1961	धारा 14	निरीक्षक	–	–	निरीक्षक की पूर्व अनुज्ञा से अपराध का संज्ञान ।
37.	अभ्रक खान श्रम कल्याण निधि अधिनियम, 1946	धारा 5	कल्याण प्रशासन निरीक्षक	–	–	–
38.	खान अधिनियम, 1952	धारा 5	मुख्य निरीक्षक निरीक्षक	– –	– –	– –
39.	न्यूनतम मजदूरी अधिनियम, 1948	धारा 19	निरीक्षक	धारा 20	कर्मकार प्रतिकर आयुक्त	–
40.	मोटर परिवहन अधिनियम, 1948	धारा 4	मुख्य निरीक्षक	–	–	अभियोजन निरीक्षक की पूर्व मंजूरी से चलाया जा सकेगा ।
41.	बोनस संदाय अधिनियम, 1965	धारा 27	निरीक्षक	–	–	कोई भी न्यायालय अपराध का संज्ञान श्रम आयुक्त की अनुज्ञा से करेगा, अन्यथा नहीं ।
42.	उपदान संदाय अधिनियम, 1972	धारा 3 धारा 7	नियंत्रक प्राधिकारी निरीक्षक	धारा 7(7)	समुचित सरकार	–

परिशिष्ट 6—समाप्त

1	2	3	4	5	6	7
43.	मजदूरी संदाय अधिनियम, 1936	धारा 15	किसी श्रम न्यायालय या औद्योगिक अधिकरण का पीठासीन अधिकारी या कर्मकार प्रतिकर आयुक्त	धारा 17	प्रैसिडैंसी नगर में लघुवाद न्यायालय और अन्यत्र जिला न्यायालय	—
44.	वैयक्तिक क्षति (प्रतिकर बीमा) अधिनियम, 1963	—	—	—	—	—
45.	बागान श्रम अधिनियम, 1951	धारा 3क	रजिस्ट्रीकर्ता अधिकारी	धारा 3ग	विहित प्राधिकारी	—
46.	विक्रय संवर्द्धन कर्मचारी (सेवा शर्तें) अधिनियम, 1976	धारा 8	निरीक्षक	—	—	अपराध का संज्ञान तब तक नहीं किया जाएगा जब तक कि 6 मास के भीतर न किया गया हो। धारा 11
47.	व्यवसाय संघ अधिनियम, 1926	धारा 3	व्यवसाय संघ रजिस्ट्रार	धारा 11	प्रैसिडैंसी नगरों में उच्च न्यायालय या अन्यत्र आरंभिक अधिकारिता वाला प्रधान सिविल न्यायालय	अभियोजन के लिए रजिस्ट्रार की पूर्व मंजूरी आवश्यक है।
48.	साप्ताहिक अवकाश दिन अधिनियम, 1942	धारा 7	निरीक्षक	—	—	—
49.	श्रमजीवी पत्रकार और अन्य समाचारपत्र कर्मचारी (सेवा की शर्तें) और प्रकीर्ण उपबंध अधिनियम, 1955	—	—	—	—	—
50.	श्रमजीवी पत्रकार (मजदूरी दर नियतन) अधिनियम, 1958	—	—	—	—	—
51.	कर्मकार प्रतिकर अधिनियम, 1923	धारा 19	कर्मकार प्रतिकर आयुक्त	धारा 30	उच्च न्यायालय	कोई भी अभियोजन आयुक्त द्वारा या उसकी पूर्व मंजूरी से ही संस्थित किया जाएगा और कोई भी न्यायालय अपराध का संज्ञान तब तक नहीं करेगा जब तक कि उसका परिवाद उस तारीख के छह मास के भीतर नहीं किया गया हो जिस तारीख को अपराध के किए जाने का अभिकथन आयुक्त की जानकारी में आया था।

88-M/B(N)318MofLJ&CA—300—25-8-90—GIPS

PLD. 92. CXXII (H)
300—1988 (DSK—IV)

मूल्य : (देश में) रुपए 118.00; (विदेश में) £4.10 या $7.8

1990

प्रबन्धक, भारत सरकार मुद्रणालय, शिमला द्वारा मुद्रित

प्रकाशन तथा नियन्त्रक, विभाग भारत सरकार, सिविल लाइन्स, दिल्ली 110054 द्वारा प्रकाशित।